॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला

६८

वैद्यक
चमत्कारचिन्तामणिः

भिषग्वर-लोलिम्बराजविरचितः

'विमला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याविभूषितः

व्याख्याकार: सम्पादकश्च

श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

एम० ए०, आयुर्वेदाचार्यः, साहित्याचार्यश्च



चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

१९७३

THE

VIDYABHAWAN AYURVEDA GRANTHAMALA

68

VAIDYAKA

CAMATKĀRACINTĀMAṆI

OF

LOLIMBARĀJA

Edited with

The Vimalā Sanskrit and Hindī Commentaries

By

ŚRĪ BRAHMĀNANDA TRIPĀTHĪ, M. A

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1973

दिवंगत

माता जी

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

ब्रह्मानन्द त्रिपाठी



दो शब्द

आचार्य प्रियव्रत शर्मा
अध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग :
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

आयुर्वेद वाङ्मय-वारिधि के जितने रत्न अब तक प्रकाश में आये हैं उनसे बहुत अधिक संख्या उन रत्नों की है जो अब तक उसके गर्भ में विलीन हैं। आवश्यकता है ऐसे गोताखोर सामुद्रिकों की जो उन्हें प्रकाश में ला सकें। आयुर्वेद का क्षेत्र ऐसा रहा है जिसमें पठित व्यक्ति भी लोक-कल्याण में ही प्रवृत्त होता है क्योंकि आयुर्वेद का चरम लक्ष्य दुःख-निवारण ही है। शास्त्रीय अनुसन्धान या निर्माण में कम ही लोग आ पाते हैं। फिर भी समय-समय पर प्रतिभाशाली शास्त्रज्ञ वैद्यों ने परम्परा को अपनी रचना में गुम्फित किया। सयोग से इनमें अनेक कारयित्री कवि-प्रतिभा के धनी भी निकले। परिणामत ऐसी अनेक रचनाओं का सृजन हुआ जिनमें आयुर्वेद के साथ-साथ कवित्व का भी अपूर्व संयोग रहा। सामान्य भाषा में यों कह सकते हैं कि इन रचनाओं के द्वारा कवित्व की चाशनी में पगा हुआ आयुर्वेद लोक के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। ऐसी कृतियों में लोलिम्बराजकृत 'वैद्यजीवन' सर्वप्रसिद्ध है।

लोलिम्बराज एक शास्त्रज्ञ, सहृदय एवं कविवर वैद्य थे। ऐसे ही वैद्यों में 'कविराज' विशेषण सार्थक होता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में आयुर्वेद के साथ-साथ कवित्व का ऐसा मणिकाञ्चन योग किया है जो अन्यत्र कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता। 'वैद्यजीवन' के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनायें भी महत्त्वपूर्ण और सद्ग्रहणीय हैं किन्तु दुर्भाग्य से वे उपलब्ध नहीं रहीं।

पण्डित श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी स्वयं एक अच्छे शास्त्रज्ञ एवं कविवर हैं। आयुर्वेद के साथ-साथ साहित्य में भी उनकी अबाध गति है। इनके लिये स्वाभाविक ही था कि 'लोलिम्बराज' पर इनकी दृष्टि जाती। फलत. इन्होंने लोलिम्बराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर वर्षों के परिश्रम से महत्व-पूर्ण शोध-कार्य किया है जिससे अनेक दुर्लभ तथ्य प्रकाश में आये हैं। लोलिम्बराज की अन्यतम रचना 'वैद्यावतंस' कुछ वर्ष पूर्व आपके द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुकी है। अब यह 'चमत्कारचिन्तामणि' प्रस्तुत है। प्रभूत परिश्रम से इस ग्रन्थ को आपने सँवारा है और संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्याओं के द्वारा रचयिता के भावों को यथाशक्य अभिव्यक्त करने का यत्न किया है। यद्यपि कुछ अन्य पाण्डुलिपियां उपलब्ध होतीं तो पाठ-निर्णय में और शुद्धता आती फिर भी इस अनमोल रत्न की इस सुन्दर रूप में अभिव्यक्ति ही अपने आप में एक ऐतिहासिक महत्त्व रखती है।

कहना न होगा, पण्डित त्रिपाठी के सदृश अन्य कोई व्यक्ति लोलिम्बराज पर प्रामाणिक अधिकार रखने वाला इस समय नहीं है। इस उत्कृष्ट कार्य के लिये मैं आपको बधाई देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में लोलिम्बराज की अन्य रचनायें भी आपके द्वारा प्रकाश में आयेंगी।

धन्वन्तरि त्रयोदशी
दि० ३-११-७२

—प्रियव्रत शर्मा

प्राक्कथन

"ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदम्" चरक के इस पद्यांश के अनुसार आयुर्वेद की परम्परा सामान्यत ब्रह्मा से प्रारम्भ होती है किन्तु पौराणिक दृष्टिकोण उक्त मत मे सर्वथा भिन्न है। इसके अनुयायी आयुर्वेद की उत्पत्ति ब्रह्मा के मानसपुत्र 'प्रजापति' से मानते है। प्रजापति का ही दूसरा नाम 'प्राचेतस' है। आयुर्वेद-परम्परा मे उक्त प्राचेतस शब्द 'दक्षप्रजापति' के लिये प्रयुक्त मिलता है। अस्तु, इस प्रजापति ने चारो वेदो के विवेचन के पश्चात् आयुर्वेद का सृजन किया। यह चारो वेदो का सारस्वरूप पाचवा वेद उन्होने भास्कर को दिया। उसको भास्कर ने स्वतन्त्र सहिता का रूप देकर अपने शिष्यो को पढाया।[1] इस पवित्र परम्परा मे प्राप्त यह आयुर्वेद पुरुषार्थ-चतुष्टय प्राप्ति का एकमात्र साधन माना जाता है। यही मानव जीवन की सफलता का प्रतीक है, अतएव भगवान् धन्वन्तरि ने सुश्रुत सहिता मे कहा है —'चिकित्सा से अन्य कोई पुण्यतम कार्य नही है,[2] क्योकि आरोग्यता के अभाव से मानव किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है। इसी इष्टापूर्ति के लिये आर्ष सहिताओ के पश्चात् समय-समय पर आयुर्वेद विद्वानो ने चिकित्सा-ग्रन्थो का निर्माण किया। यद्यपि इस प्रकार के अनेक चिकित्साग्रन्थ कविराज लोलिम्बराज के सम्मुख प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकाल मे नि सन्देह रहे होंगे, तथापि इसकी रचना का कोई न कोई कारण अवश्य रहा होगा। वह कारण हमारी समझ से आयुर्वेदरूपी समुद्र के मन्थन से अभिनव रत्न की खोज थी, जिसके फलस्वरूप "चमत्कार-चिन्तामणि" नामक ग्रन्थ-रत्न का आविर्भाव हुआ।

ग्रन्थकार का दृष्टिकोण —

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में लेखक ने "दिवाकरप्रसादेन" इस पद्यांश के द्वारा अपने पितृचरणो का स्मरणकर साथ ही पौराणिक परम्परा से प्राप्त आयुर्वेद

---

१ ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ब्रह्मखण्ड अ० १६।

२ चिकित्सितात्पुण्यतम न किञ्चिदिति शुश्रुम ॥ सुश्रुत ॥

की ऐतिहासिकता को भी स्वीकार किया है। जब हम चिकित्सा के विभिन्न प्रकारो की ओर ध्यान देते है तब हमको वैदिक काल से लेकर आजतक इसके अनेक प्रामाणिक उद्धरण उपलब्ध होते हैं। यथा—उदय होती हुई सूर्य की किरणे क्रमिनाशक होती हैं।[१] सूर्य के प्रकाश से हमारा कभी वियोग न हो।[२] सूर्य स्थावर-जगम की आत्मा है।[३] सूर्य ही प्राणियो का प्राण है।[४] अतएव घर का पूर्वाभिमुख द्वार चरक के मत से प्रशस्त माना गया है[५] तथा सूर्य से आरोग्य-प्राप्ति करे।[६] इतना ही नही भास्करलवण आदि कुछ योग भी सूर्य के नाम से आयुर्वैदिक साहित्य मे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं,, सम्भवत इस नामकरण मे आचार्यों का यही दृष्टिकोण रहा हो।

आयुर्वेद मे चिकित्साग्रन्थों का स्थान '—

चरक, सुश्रुत, वाग्भट इन तीनो आर्ष संहिताओ के पश्चात् लिखे गये अनेक उत्तमोत्तम विशालकाय चिकित्साग्रन्थ सहस्रो योगो को उर मे पिरोये हुए ग्रन्थ-कर्ता के लेखन-काल मे सुलभ थे किन्तु उनमे से कौन योग अधिक उपादेय हैं, कौन नहीं, यह निर्णय लेना साधारण जनता के लिये कठिन था। चिकित्सा-कार्य मे यह विचिकित्सा न हो, अतएव इस लघुकाय किन्तु सर्वाङ्ग ललित ग्रन्थ-रत्न का निर्माण किया गया। यह ग्रन्थ सिद्धान्तत सत्य, सरल, सक्षिप्त एव ग्रन्थकार के अपने सुपरीक्षित योगो का सकलन है। हमारे विचार से साहित्य एव आयुर्वेद का ऐसा उत्कृष्ट सम्मिश्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

समय का प्रभाव —

यद्यपि कविराज लोलिम्बराज के ग्रन्थो मे उनके कालनिर्णयादि के परिचय का कोई निश्चित सकेत नही मिलता तथापि कुछ तथ्यो को लेकर हम इनको १६वी शताब्दी का मानते हैं। इसकाल मे उत्कृष्ट काव्यरचना के अनेक निदर्शन प्राप्त

---

१ उद्यन्नादित्य क्रमीन् हन्ति। वेद।

२ न सूर्यस्य सदृशे मा युयोथा। ऋक् २।३३।१।

३ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ऋक् १।११५।१।

४ आदित्यो ह वै प्राण। प्रश्नोपनिषद् १।५।

५ प्राङ्मुखमुदङ्मुख वाऽभिमुखतीर्थं कूटागार कारयेत् ॥ च० सू० अ० १४।४६।

६ आरोग्य भास्करादिच्छेत्।

हैं, विहारी की 'सतसई' इसी समय की अमूल्य निधि है। इसमे मुगलकाल के वैभव का पूरा प्रतिविम्ब झलकता है। उसी विलासमय जीवन की छाप उस समय के आयुर्वैदिक साहित्य मे भी मिलती है, जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण चमत्कारचिन्तामणि तथा 'वैद्यजीवन" है। रसौपधियो तथा वाजीकरण योगो की फलश्रुति इसका देदीप्यमान उदाहरण है। सम्भवत मुगलो के विलासी जीवन के लिये ही तात्कालिक सुधी वैद्यो ने इस प्रकार की रचनाये की हो।

चमत्कारचिन्तामणि पर अन्य ग्रन्थों की छाया —

ऐतिहासिक दृष्टि से दक्षिण प्रदेश मे 'अष्टाङ्गसग्रह' और 'अष्टाङ्गहृदय' का प्रचार अन्य सहिताओ की अपेक्षा आज भी अधिक है, अतएव ग्रन्थकार की यह प्रतिज्ञा[1] है, इसके अतिरिक्त भी उक्त ग्रन्थ मे 'चक्रदत्त' 'शार्ङ्गधरसहिता' 'भैपज्यरत्नावली' तथा 'भावप्रकाश' के आशुलाभकारी योगो का संग्रह मिलता है। महाराष्ट्र मे उस समय भी सग्रह ग्रन्थो के माध्यम से चिकित्सा चलती रही। वहाँ वगाल के 'चक्रदत्त' या 'वंगसेन' का प्रचार कम हुआ परन्तु इनके ढग पर अन्य अनेक चिकित्सा सग्रह ग्रन्थ लिखे गये, जिनके अन्तर्गत इनकी कृतिया भी सादर उल्लेखनीय हैं।

वैद्यजीवन तथा चमत्कारचिन्तामणि —

ये दोनो ग्रन्थ कविराज लोलिम्वराज के अप्रतिम बुद्धिविलास एव चतुरस्र प्रतिभा का परिचय देते हैं। दोनो मे सवादात्मकता तथा आदर्श चिकित्सा का दृष्टिकोण समानरूपेण विलसित है। साथ ही इनकी स्त्री रत्नकला का वैदुष्य अन्तर्लापिका, वहिर्लापिका, कूट आदि के प्रसग मे अपना एक विशिष्ट आदर्श

---

१ (क) आत्रेयहारीतपराशराणा भोजेन भेडेन समन्वितानाम्।
तन्त्राणि चित्राणि मनोहराणि चातुर्यपूर्णानि निरीक्ष्य सम्यक्॥
चमत्कारचि० २।६।

(ख) वाग्भटस्य मतमस्ति समस्त सुश्रुतस्य चरकस्य च किञ्चित्।
तद्वदत्रिनयनस्य विचित्रा वाग्विलासरचना मम तावत्॥
वैद्यावतस ५५।

उपस्थित करता है। उक्त दोनो ग्रन्थो का अनेक स्थलो पर भावसाम्य होते हुए भी उक्ति वैचित्र्य प्रशसनीय है।[1]

ग्रन्थकार-परिचय :—

दिवाकर के पुत्र कविराज लोलिम्बराज नासिक के समीप जुन्नर ग्राम के निवासी, शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत मध्यन्दिनशाखाध्यायी जोशी ब्राह्मण थे और राजा हरिहर के सभापण्डित थे, जैसा हरिविलास काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य से ज्ञात होता है।[2] सप्तशृङ्गी देवी की उपासना से इन्होंने अपूर्व कवित्व-शक्ति प्राप्त की।[3] इनके पूर्वज ज्योतिषवृत्ति से अपनी आजीविका करते थे। ये साहित्य, व्याकरण, वेदान्त, मन्त्रशास्त्र, आयुर्वेद तथा सगीत के उद्भट विद्वान् थे। इन्होने अपना विवाह एक सुलतान की 'मुरासा' नामक कन्या से किया। यह 'मुरासा' शब्द 'मेहरुन्निसा' का अपभ्रश प्रतीत होता है। इसका अर्थ होता है—स्त्रियो मे सूर्य के सदृश। सचमुच यह अत्यन्त सुन्दरी रही होगी, अतएव लोलिम्बराज ने सवादात्मकता की प्रधानता से सम्पन्न वैद्यजीवन तथा चमत्कार-चिन्तामणि ग्रन्थो मे प्रयुक्त सम्बोधनो के द्वारा अपनी प्रियतमा का नख-शिख वर्णन कर उसको त्रैलोक्य-सुन्दरी के पद से विभूषित किया है। महाराष्ट्र की परम्परा के अनुसार इन्होंने विवाह होने के पश्चात् इसका नाम रत्नकला रख लिया। वैद्यकवृत्ति इनकी आजीविका का साधन थी। इनकी रचनायें—हरि-

१ (क) औषध मूढवैद्याना त्यजन्तु ज्वरपीडिता।
परससर्गससक्त कलत्रमिव साधव॥ वैद्यजीवन।
(ख) न ग्राह्य मूर्खभिषजो भेषज प्राज्ञरोगिभि।
गृहीत यदि कश्चाक्षि जनयेत्तद्गदान्तरम्॥ चमत्कार चि०।

२ नानागुणै खनिमण्डलमण्डनस्य
श्रीसूर्यसूनुहरिभूमिभुजो नियोगात्।
काव्य कृत हरिविलास इति प्रसिद्ध
लोलिम्बराजकविना कविनायकेन॥ हरिविलास काव्य।

३ रत्न वामदृशा दृशा सुखकर श्रीसप्तशृङ्गास्पद
स्पष्टाष्टादशबाहुतद्भगवतो भर्गस्य भाग्य भजे।
यद्भक्तेन मया घटस्तनि घटीमध्ये समुत्पाद्यते
पद्याना शतमङ्गनाधरसुधास्पर्धाभिधानोद्धुरम्॥ वैद्यजीवन।

विलासकाव्य, वैद्यजीवन, चमत्कारचिन्तामणि, वैद्यावतस (सस्कृत मे) तथा वैद्यकफाव्य और रत्नकलाचरितम् (मराठी मे) उपलब्ध हैं। इनका समय १४६० से १५३० शकाब्द तदनुसार १५३८ से १६०८ ई० निश्चित किया गया है।

वैद्यजीवन की शैली पर लिखे गये इस चिकित्सा ग्रन्थ मे त्रिविध औषध का वर्णन किया गया है[1]। इसमे अधिकाश युक्तिव्यपाश्रय योगो का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। दैवव्यपाश्रय तथा सत्वावजय योगो का सकेतमात्र दृष्टिगोचर होता है। भिषग्वर लोलिम्बराज का सत्वावजय से सम्भवत अपथ्यवर्जन का ही अभिप्राय रहा है, अन्यथा मानसरोग प्रतिरोधक औषध द्रव्यो का भी इसमे कही न कहीं अवश्य उल्लेख होता। इस ग्रन्थ मे चिकित्सा सम्बन्धी विषय के अतिरिक्त शब्दालंकार, अर्थालकार, लक्षणा, व्यञ्जना, गुण, रीति तथा अनेक वर्णिक एव मात्रिक छन्दो का समुचित विनियोग किया गया है। कहीं-कहीं कर्तृगुप्त, क्रियागुप्त, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका और वाकोवाक्य (सवाद) की भी विचित्र छटा दृष्टिगोचर होती है। इन सब साहित्यिक तत्वो के समावेश को देखते हुए इस 'चमत्कार-चिन्तामणि' को यदि लघुकाव्य कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। यह ग्रन्थ पाच विलासो मे विभक्त है। इसकी सम्पूर्ण श्लोक संख्या दो सौ इकतालीस है।

तुलना—इसमे विषयानुक्रम प्राय वैद्यजीवन के अनुरूप है तथा वैद्यजीवन के कतिपय पद्य भी अविकल रूप से उद्धृत हैं, कुछ अन्य पद योग की दृष्टि से समान हैं तो उनका साहित्यिक अंश भिन्न है। ऐसे पद्यो की सख्या अत्यल्प है। फिर भी इस ग्रन्थ में उक्त प्रकार की समानता का दिखलाई देना आश्चर्य नही अपितु स्वाभाविक ही है। आप ध्यान दें—चरक सहिता, भेड सहिता, पाराशर सहिता आदि के रचयिताओ के पृथक्-पृथक् होने पर भी उनके अनेक अशो में अविकल साम्य है। उस साम्य के समाधान मे कहा गया है कि 'आचार्य के उपदेश देने मे किसी प्रकार का अन्तर न होने पर भी शिष्यो की

१ त्रिविधमौषधमिति—दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय, सत्वावजयश्चेति। तत्र दैव-व्यपाश्रय मन्त्रौषधमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि। युक्तिव्यपाश्रयम्-पुनराहारविहारौषधद्रव्याणां योजना। सत्वावजय पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनो निग्रह.। चरक सू० अ० ११।५२।

बुद्धिगत भिन्नता से रचना मे भी भिन्नता आ गयी थी'।[1] यहाँ पर तो ग्रन्थो का रचयिता ही एक है, अतएव दोनो रचनाओ मे यत्र-तत्र समानता का होना बुद्धिसगत ही प्रतीत होता है। इसके योगो की अमोघता, सरलता और सुभलता अनुकरणीय है।

प्रेरणा—ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने तथा पैतृक संस्कारो के कारण सस्कृत-साहित्य के साथ-ही-साथ आयुर्वेदिक साहित्य की ओर भी मेरी पर्याप्त अभिरुचि रही। अतएव मैं अध्ययन-काल मे दोनो विषयो की ओर अभिमुख हुआ। उस समय मैंने परमपूज्य गुरुवर श्री लालचन्द्र वैद्य, प्रधानाचार्य अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी की प्रेरणा से पाठ्यक्रम मे निर्धारित न होने पर भी कविराज लोलिम्बराज विरचित 'वैद्यजीवन' का स्वतन्त्र अध्ययन किया और आयुर्वेद मे इस प्रकार की उत्कृष्ट साहित्यिक रचना को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ। अध्ययन-समाप्ति के अनन्तर अपने अधीत विषयो के अनुरूप किसी विषय पर अनुसन्धान करूँ ऐसी मन मे उत्कट उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। तब साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ गुरुदेव पण्डितप्रवर बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते जी के अभिन्न मित्र नागपुर निवासी महर्षिकल्प न्यायपञ्चानन वसन्त त्र्यम्बक शेवडे जी ने मेरी शैक्षणिक योग्यता के अनुसार 'कविराज लोलिम्बराज और उनकी कृतिया—एक अध्ययन' विषय पर गवेषणा करने के लिये मुझे प्रेरित किया। राजकीय महाविद्यालय नैनीताल के संस्कृत विभागाध्यक्ष परमादरणीय गोपालदत्त जी पाण्डेय के निर्देशन मे आगरा विश्वविद्यालय ने उक्त विषय पर कार्य करने की मुझे अनुमति प्रदान की।

टीका—अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ करने पर मुझे भिषग्वर लोलिम्बराज की दूसरी कृति 'चमत्कारचिन्तामणि' जो अद्यावधि अप्रकाशित थी, के दर्शन हुए। इसमे भी वही विषय, वही शैली, वही रोचकता और वैसा ही आकर्षण देख मैंने ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा के[2] अनुसार इसका सम्पादन प्रारम्भ कर दिया।

---

[1] बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तर मुने। चरक सू० अ० १।३२।

[2] आत्रेयहारीतपराशराणा भोजेन भेडेन समन्वितानाम्।
तन्त्राणि चित्राणि मनोहराणि चातुर्यपूर्णानि निरीक्ष्य सम्यक्॥
दिवाकरप्रसादेन रोगारोग्यकहेतवे।
रचयामश्चमत्कार-चिन्तामणिमणीयसम्॥ च० चि० १।६, ७।

इसकी टीका लिखते समय श्रीमद्भागवत् की टीका सुखसागर वाला स्वरूप न अपनाकर आधुनिक स्वस्थ परम्परा के अनुसार विशद विवेचन प्रस्तुत कर विषय को समझाने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है। कुछ स्थलो पर आवश्यकतानुसार वक्तव्य देकर तत्-तत् विषय सम्बन्धी अपनी मान्यतायें भी व्यक्त की हैं। साथ ही हस्तलिखित प्रति मे व्याकरण सम्बन्धी जो अशुद्धिया थीं उनको शुद्ध करते समय ग्रन्थकर्ता के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए योग अथवा द्रव्य का परिवर्तन अथवा परिवर्धन नही किया गया है।

निवेदन—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के यशस्वी सञ्चालको की महती अनुकम्पा से प्रकाशित इस अभिनव ग्रन्थ को विद्वानो की सेवा मे सादर समर्पित करते हुए अमित आनन्द का अनुभव हो रहा है। इसके सम्पादन मे यदि कहीं किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो तो गुणैकपक्षपाती विद्वज्जन क्षमा करें।

धन्वन्तरि त्रयोदशी
२०२९ वि०

विदुषां विधेय :—
ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

विषयानुक्रमः



शुद्धिपत्रम्

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठ	पंक्ति
योगाः	योगः	२२	२३
अभिरोषधिभिः	आभिरोषधिभिः	२२	३०
कृता	कृतो	२२	३०
योगाः	योगः	२३	१
विनाशयन्ति	विनाशयति	२३	१

वैद्यक-

चमत्कारचिन्तामणिः

अथ प्रथमो विलासः

मङ्गलाचरणम्—

लीलावति लताकल्पे कल्पनालिसुसंगमे ।
करोतु विघ्नं विघ्नानां विघ्नानां नायकस्तव ॥ १ ॥

टीकाकर्तुर्मङ्गलाचरणम्—

साम्ब शिव शिवकर वनजायताक्ष गौरीसुत सकलविघ्नविनाशदक्षन् ।
भक्त्या प्रणम्य सतत नमितोत्तमाङ्गष्टीकां करोमि विमलां विशदार्थदात्रीम् ॥

अथायुर्वेदशास्त्रगतचिकित्साविषय सूक्ष्मसमीक्षया विपश्चिदपश्चिमाना प्रमोदाय चिकित्सक-चूडामणि कविवर्ण्यो लोलिम्बराज कमपि नूल 'चमत्कारचिन्तामणि' नामक प्रबन्धरत्न चिकीर्षुस्तत्परिसमाप्तिप्रमारादिप्रतिबन्धकविघ्नौघनिवारणाय श्रुतिबोधितेतिकर्तव्यताकशिष्टा-चारमङ्गीकृत्य मङ्गलाचरणमाचरन् विघ्नविनिवारक विनायकमभ्यर्थयन् रत्नकला च सम्बो-धयन् आशीर्वादात्मक मङ्गलम् अनुष्टुभा निबध्नाति—

व्याख्या—हे लीलावति ! रत्नकले ! लताकल्पे 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर.' ईषदूना लता इव इति लताकल्पा, गौराङ्गीत्वात् । 'उलप गुल्मिनी वीरुल्लता वल्ली मतेति च"-निघण्टु. । कल्पनालिसुसगमे कल्पनापरम्परया शोभन सगमो यस्या सा, विघ्नानां नायको गणेशस्तव विघ्नाना प्रत्यूहाना विघ्न विनाश करोतु । डुकृञ्करणे, आशिषि लोट् । 'विनायको विघ्नराज.' । 'विघ्नोऽन्तराय प्रत्यूह' उभयत्राप्यमर । (अनुष्टुप् छन्द ।)

हिन्दी—लता के समान सुकोमलाङ्गी कल्पनाओं के द्वारा भी सगम सुख का आस्वादन करनेवाली हे रत्नकले ! सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करने वाले श्रीगणेश तुम्हारे विघ्नों का नाश करें ।

विशेष—श्री लोलिम्बराज अपनी विदुषी प्रियतमा रत्नकला को आयुर्वेद का उपदेश देने के व्याजसे इस ग्रन्थ की रचना कररहे है ॥ १ ॥

श्रीकृष्णस्य वालसुलभा प्रवृत्ति विवृण्वन् कविर्द्वितीय मङ्गलाचरणम् प्रस्तौति—

वाले चञ्चलकोमले सुवदने ते शैलतुल्यौ स्तनौ
तुल्यं मे कुसुमैर्वपुर्दृढतरं मा मा त्वमालिङ्ग माम्।
यद्यालिङ्गसि मां वलाददमिदं सर्वं यशोदाऽग्रतो-
वक्ष्यामीति भणन् हसन् भवभयाल्लक्ष्मीपतिः पातु माम्॥ २॥

व्याख्या—श्रीकृष्ण कामपि-अप्राप्तयौवनां गोपिकाम्प्रति कथयति, वाले, इति, वाले! अपूर्णषोडशहायने चञ्चला चपला चासौ कोमला च तत्सम्बुद्धौ चञ्चलकोमले, सुवदने सुष्ठु शोभन वदन मुख यस्या सा तत्सम्बुद्धौ हे सुवदने! 'वक्त्रास्ये वदन तुण्डम्' इत्यमरः। ते तव शैलतुल्यौ कठोरौ स्तनौ कुचौ, अपूर्णषोडशवर्षाया· स्तनयो· शैलतुल्यत्व कठोरत्व प्रसिद्धमेव। मे मम कृष्णस्य वपु शरीर 'गात्र वपु सहननम्' इत्यमर। कुसुमैः प्रसूनै तुल्य समानमस्तीति। अतस्त्व मा दृढतर गाढ "गाढवाढदृढानि च" इत्यमरः। मा मा नैवालिङ्ग। यदि वलादालिङ्गसि तर्हि अहम् इद सर्वं तव चेष्टित व्यवहार यशोदाग्रतो मातु· पुरतो वक्ष्यामि कथयिष्यामि, इत्थ प्रकारेण सलपन् भाषमाणो हसश्च लक्ष्मीपतिः श्रीकृष्ण भवभयात् ससारदु·खात् रोगशोकादिभ्य· मा पातु। शार्दूलविक्रीडितम्।

हिन्दी—श्री कृष्ण किसी नवोढा गोपिका से कह रहे हैं—हे चञ्चल स्वभाववाली, नवयुवती, कोमलाङ्गी सुमुखी तेरे स्तन पहाड़ के समान कठोर है, और मेरा शरीर फूलों के समान सुकोमल है, तुम मुझे आलिङ्गन मत करो, मत करो। यदि तुमने हठ से आलिङ्गन किया तो मैं तुम्हारी सारी बातें माता यशोदा से कहदूंगा। ऐसा कहते हुए भवगान् कृष्ण हँसने लगे, इस प्रकार प्रसन्नचित्त श्रीकृष्ण दुःख·दरिद्रता·रोग आदि संसारिक बाधाओं से हमारी रक्षा करें।

विशेष—इसप्रकार की क्रीड़ा को माता के समीप कहना और 'मुझे आलिङ्गन मत करो' इस प्रकार का निषेध तथा "तुम्हारे स्तन पहाड़के समान कठोर हैं" यह दोनों ओर से बालक्रीडा का मधुर निदर्शन है। उपरिलिखित इस श्लोक में आये हुए 'बाले' शब्द का 'राधिका' अर्थ होना चाहिये॥ २॥

कवि पुनरपि प्रकारान्तरेण स्वेष्टदेव रासविलासदक्ष राधाकृष्ण स्तौति—

मां हित्वाऽन्यवधूं प्रयासि भगवन्नैतन्मृषा वत्सले
चेत्सत्यं प्रभवेदिदं यदुपते तर्हि प्रसन्नानने।
त्वद्वक्षोरुहशैलराजशिखरात् पातं करिष्ये क्षणात्
नान्यत्किञ्चिदितिभ्रमं हरतु मे राधाच्युतोक्तं वचः॥ ३॥

व्याख्या—राधिका कृष्ण प्रति वक्ति—हे भगवन्! मा राधिका सर्वथा त्वय्यनुरक्तां हित्वा परित्यज्य, अन्यवधू प्रयासि? अत्र काक्वा व्यज्यते यत् राधिका गमनायोद्यत कृष्णं

वारयति छान्छनारोपव्याजेन। एतच्छ्रुत्वा कृष्ण कथयति—हे वत्सले, प्रिये एतद् तव वच सर्वथा मृषा मिथ्या। पुनाराधा पृच्छति—हे यदुपते! कृष्ण! चेद् इद परवधूसमीपगमनं सत्य प्रमाणित भवेत्? तदा श्रीकृष्ण प्रतिज्ञां करोति, हे प्रसन्नानने! राधिके! अद्य त्वद्-वक्षोरुहशैलराजशिखराद् वक्षसि रोहतीति वक्षोरुह स्तन, 'जातावेकवचनम्' वक्षोरुह एव शैलराट पीनोन्नतत्वाद्, तस्य शिखराद्, क्षणाद् तत्क्षणमेव पात करिष्ये निपतिष्यामि, (कामक्रीडाविधौ कामिजनस्य कृते-एष प्रकारो महान् दुष्करः, अतएव शपथरूपेण श्रीकृष्णो राधिकासम्मुखे कथयति) नान्यद् किञ्चिदिति नान्यः कश्चिदुपाय., राधा च अच्युतश्च तौ, तयो. उक्तं कथितम् एतद् राधाच्युतयो रहस्यवर्णनात्मक वच सलापात्मकं वाक्य मे ग्रन्थकर्तु श्रम हरतु आयास दूरीकरोतु।

हिन्दी—राधाकृष्ण के रहस्यसंलाप का वर्णन कर कवि अपने इष्टदेव की स्तुति कर रहा है। राधा कृष्ण से कह रही है-हेभगवन्! आप मुझको छोड़कर दूसरी स्त्री के पास जा रहे हैं? नहीं नहीं प्रिये यह सर्वथा झूठ है। फिर राधिका कहती है—हे कृष्ण यदि यह बात सच हो गई तो? तब कृष्ण कहते हैं—हे सुमुखि? तुम्हारे पीन एवं उन्नत स्तनों के सुखद स्पर्श का तत्काल त्याग करदूँगा (अर्थात् तुम्हारे स्तनरूपी शैलशिखर मे गिरकर आत्महत्या कर लूँगा) और मेरे पास इसका कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार राधा कृष्ण की प्रेमभरी बातें ग्रन्थकर्ता के परिश्रम को दूर करें ॥ ३ ॥

स्वेष्टदेवस्तुतावक्तृत कविस्तुरीयेन पद्येन रासलीलावर्णनप्रसङ्गमुररीकृत्य परमब्रह्म-स्वरूपिण श्रीकृष्ण स्तुवन् स्मरणात्मक मङ्गल प्रस्तौति—

कयाचित्कामिन्या कुचकनककुम्भे विनिहितं
कयाचित्संभुक्तं घनतमतमःस्तोमगहने।
स्मरामस्तं बालं कुवलयदलश्यामलतनु
विमूलं चिल्लक्ष्यं कलिकलुषकल्लोलदलनम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—कयाचिदगृहीतनामधेयया कामिन्या गोपिकया कुच एव कनककुम्भः गौरपीनत्वाद् तस्मिन् विनिहितम् आश्लिष्टम्, कयाचिदपरया घन निबिड तमः तस्य स्तोम समूह. तेन गहने देशे स्थाने सम्भुक्त रतिक्रीडया निवृत्तम्। कुवलयम् उत्पलं तस्य दल तदिव श्यामला तनुर्यस्य त विमूलम् अनादित्वाद्, चिल्लक्ष्य चैतन्यस्वरूपं कलि-कलुषाणां कल्लोल परम्परा तस्य दलने हेतुभूत त बाल कृष्ण वय लोलिम्बराजा स्मराम। 'एकत्व न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे' इति वचनाद् आत्मनि बहुत्व प्रयुक्तम्। शिखरिणी छन्द·

हिन्दी—अनादि चैतन्यस्वरूप, कलियुग के पाप-समूह का विनाश करने-वाले और नीलकमलदल के सदृश श्याम वर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण का हम ध्यान करते हैं। जिनका रासलीला के अवसर पर किसी रमणी ने गाढ आलिंगन

किया और किसी ने उनसे अन्धकार पूर्ण स्थान में सम्भोग जनित सुख प्राप्त किया ॥ ४ ॥

एतदनन्तर ग्रन्थकर्ता-आयुर्वेदविषय विवृण्वानोऽपि चित्रकाव्यमुखेन नमस्कारात्मक मङ्गल निवध्नाति—

नमामि मानिनं रामं निर्ममं राममारमम् ।
नुन्नराममनोमानं नरनारीमनोरमम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—मानिन स्वाभिमानवन्त राम, निर्मम चतु'सागरपर्यन्त पितृराज्य परित्यज्य वन गतत्वान्मायया रहितम् । राममारम रामा चासौ मा लक्ष्मी· तस्या रमण त "रेवतीरमणो राम" इत्यमर । बलरामरूप नमामि । नुन्न प्रेरित किंवा दूरीकृतो रामस्य परशुरामस्य मनसि मान —अभिमान' येन त नरनारीमनोरम सर्वजनप्रिय त नमामि । इति त्र्यक्षरम् । अनुष्टुपछन्द ।

हिन्दी—माया मोह से निर्मुक्त और जिसने परशुराम के अभिमान को दूर कर दिया है ऐसे सर्वजनप्रिय राम तथा लक्ष्मी रूपा रेवती के पति बलराम जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

मङ्गलाचरणानन्तर ग्रन्थकृद् मत्कृतिर्न केवल कपोलकल्पिता अपितु सर्वशास्त्रसम्मतेति प्रदर्शयन्नाह—

'अथ प्रस्तावना'

आत्रेयहारीतपराशराणां भोजेन भेडेन समन्वितानाम् ।
तन्त्राणि चित्राणि मनोहराणि चातुर्यपूर्णानि निरीक्ष्य सम्यक् ॥६॥
दिवाकरप्रसादेन रोगारोग्यैकहेतवे ।
रचयामश्चमत्कार-चिन्तामणिमणीयसम् ॥ ७ ॥

व्याख्या—आत्रेय , हारीत , पराशर·, भोज , भेडश्च एतेषाम् आचार्याणा चित्राणि विविधाङ्गयुक्तानि ।(विविधाङ्गानि यथा—शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, अगदतन्त्र, कौमारभृत्य, रसायन, वाजीकरणश्चेत्यष्टावङ्गानि), मनोहराणि सर्वजनहितकराणि चातुर्यपूर्णानि युक्तियुक्तानि तन्त्राणि सम्यक् साधु यथा तथा निरीक्ष्य आद्यन्त विलोक्य, दिवाकर पिता सूर्यश्च, यतो हि—"आरोग्य भास्करादिच्छेत्" इत्युक्ते । तस्य प्रसादेन कृपया रोगाणा विनाशहेतवे आरोग्यस्थायिलाभार्थञ्च यथा—"स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम आतुरस्य व्याधे परिमोक्षणञ्चेति चिकित्साया सिद्धान्त" । अणीयसम् सक्षिप्तं "चमत्कारचिन्तामणि" नामक ग्रन्थ रचयाम । इति युग्मकम् ॥ इन्द्रवज्रा तथाऽनुष्टुप् ।

हिन्दी—आत्रेय, हारीत. पराशर, भोज और भेड (ल) इन आयुर्वेद शास्त्र-प्रवर्तक ऋषियों की विविधविषय पूर्ण एवं युक्तियुक्त सहिताओं का पूर्ण मनन करने के पश्चात्—रोगियों के आरोग्य प्रदान करने की इच्छा से तथा नीरोग

प्राणियों के स्वास्थ्य रक्षा हेतु—श्री दिवाकर (पूज्य पिता) की कृपा से मैं इस लघुकाय 'चमत्कार चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ की रचना कर रहा हूँ।

विशेष—"दिवाकर प्रमादेन" शास्त्रों में लिखा है कि आरोग्यता का इच्छुक सूर्य की उपासना करे। इस आशय से यहाँ पर दिवाकर शब्द से सूर्य का ग्रहण किया जा सकता है किन्तु ग्रन्थकर्ता के पिता का नाम 'दिवाकर' था अतः यह भी सम्भव है कि मङ्गलाचरण के प्रसङ्ग में लेखक ने अपने पितृचरणों का स्मरण किया हो ॥ ६–७ ॥

चिकित्साविधि.—

परीक्षेत रोगस्य लिङ्गानि तावत्ततोऽनन्तरं भेषजं च प्रदद्यात्।
इति व्याधिविद् यश्चिकित्सां प्रकुर्याद् भवेत्तस्य सिद्धिश्च निःसंशयेन ॥८॥

व्याख्या—यो व्याधिविद् वैद्य तावत् पूर्वं रोगस्य लिङ्गानि लिङ्ग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिङ्गतानि (निदान पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा। सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञान रोगाणा पञ्चधा मतम् ॥ तथापि एते पञ्च व्यस्ता समस्ताश्च व्याधिबोधका भवन्तीति परीक्षेत। यथाह वाग्भट –

रोगमादौ परीक्षेत तदनन्तरमौषधम्। तत कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

तत परीक्षणानन्तरं भेषज च प्रदद्याद् औषधोपचार कुर्यात। एतद्विधिना व्यवहारकर्तुस्तस्य वैद्यस्य सिद्धि.—रोगसाफल्य नि सशयेन भवेत्। भुजङ्गप्रयातम्।

हिन्दी—सर्वप्रथम निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति इन पांच प्रकार के रोग-विज्ञान के साधनों की सहायता से रोग का निश्चय करे, इसके पश्चात् औषध का प्रयोग करे। इस प्रकार चिकित्सा करने वाले वैद्य को नि सन्देह सफलता मिलती है ॥ ८ ॥

अथ सद्वैद्यलक्षणान्याह—

सकलशास्त्रपुराणविदुभ्यहो गदनिदानचिकित्सितयोः पटुः।
उदधिजन्मकरः सुकृताकरः सकरुणोऽकरुणोऽभिमतो भिषक् ॥९॥

व्याख्या—सकलानि शास्त्राणि पुराणानि च वेत्तीति सकलशास्त्रपुराणवित् यथाऽऽह सुश्रुत —

एक शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुत शास्त्र विजानीयाच्चिकित्सक ॥ सु सू ४ ॥

तथा गदनिदानचिकित्सितयो पटु. गदाना रोगाणा निदानं गदनिदान तस्मिन् चिकित्सायां च पटु अर्थात् उभयज्ञ यथोवाच भगवान् धन्वन्तरि. सुश्रुताय—

यस्तु केवलशास्त्रज्ञ कर्मस्वपरिनिष्ठित। स मुह्यत्यातुर प्राप्य प्राप्य भीरुरिवाहवम् ॥
यस्तु कर्मसु निष्णातो धाष्ट्र्याच्छास्त्रबहिष्कृत। स सत्सु पूजा नाप्नोति वध चार्हति राजतः ॥

अतएवोभयज्ञः प्रशस्त —

यस्तूभयज्ञो मतिमान् स समर्थोऽर्थसाधने । आहवे कर्म निर्वोढुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा ॥

इत्यलं पल्लवितेन, रुदधिनन्मकर'-पीयूषपाणि' । क्रुकुनाकरः पुण्यात्मा; सकरुणः दयावान्, अकरुण' शस्त्रक्षाराग्निप्रयोगेषु निष्ठुरो भिषक्-अभिमतो राजमान्यो भवति । उक्तञ्च रसार्णवे—

शस्त्रे शास्त्रे क्रियायां विविधमुनिमतः पूर्वपापापहारी
साहित्ये तर्कशास्त्रे विमलतरमति पटुगुण पापभीरु. ।
मन्त्रानुष्ठानधीरो हरिहरभजको नीतिमान् कान्तमूर्ति-
र्धर्मज्ञो भूतबन्धुर्भवति खलु भिषङ् - मङ्गलाय प्रभूणाम् ॥ इतविर्लम्बितम् ।

हिन्दी—उत्तम चिकित्सक के लक्षण-सम्पूर्ण शास्त्र एवं पुराणों का ज्ञाता, रोगपरीक्षण एवं चिकित्सा में कुशल, पीयूषपाणि, पुण्यात्मा, दयालु स्वभाववाला, चिकित्साकाल में शस्त्र, क्षार तथा दाह का प्रयोग करते समय निष्ठुर इन गुणों से युक्त चिकित्सक राजमान्य होता है ॥ ९ ॥

अथ चिकित्साया महत्त्वमाह—

यशः क्वचिद्वा द्रविणं क्वचिद्वा मैत्री क्वचिद्वा सुश्रुतं क्वचिद्वा ।
ज्ञानं क्वचिद्वा प्रभुता क्वचिद्वा चिकित्सितं निष्फलमेव न स्यात् ॥१०॥

व्याख्या—कष्टसाध्याद्यवस्थाया युक्तियुक्तचिकित्साकरणात् क्वचिद् यशः प्राप्नोति वैद्य', क्वचिद् द्रविणं धनं लभते, क्वचिन्मैत्रीलाभः सञ्जायते, क्वचिद् अनुभवमुखेन ज्ञानमर्जयति, क्वचित् प्रभुता स्वामित्वम् उररीकरोति, क्वचित् सुश्रुत प्रसिद्धिम । अत चिकित्सित कुत्रापि निष्फलं व्यर्थं न स्यात् । प्रकारान्तरेण रसार्णवेऽपि चिकित्साया प्रभुत्वमुपवर्णितम्—

क्वचिद् धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्-द्रव्यं क्वचिद् यशः ।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चैव चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥

इत्थमेव वाग्भटेनापि स्वकीयाष्टाङ्गसङ्ग्रहे-उ०८०।१२४ ॥ उपजाति ।

हिन्दी—निदान एवं चिकित्सा में कुशल वैद्य जब चिकित्साकार्य प्रारम्भ करता है तो उसको कहीं यश मिलता है कहीं धन की प्राप्ति होती है, कहीं मित्रता बढ़ती है, कहीं से प्रसिद्धि होने लगती है, कहीं से ज्ञानलाभ और कहीं प्रभुता इसप्रकार कुल मिलाकर चिकित्सा-व्यवसाय कहीं व्यर्थ नही जाता ॥ १० ॥

औषधसेवने धार्मिकदृष्टिकोणमुपवर्णयन्ति—

अमृताच्युतकौस्तुभान् सुमध्ये सह धन्वन्तरिणा गरुत्मतापि ।
स्मरता यदि भेषजं गृहीतं गदिना तस्य किमस्ति तर्हि दुःखम् ॥११॥

व्याख्या—हे सुमध्ये तन्वङ्गि ! यदि गदिना रुग्णावता अमृताच्युतकौस्तुभान् अमृतं च अच्युतः च कौस्तुभः च तान्, "परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो" इत्यनेन पुंस्त्वं निर्दिश्यते । अमृतं पीयूषम्, औषधं वा 'भैषज्यं भेषजं भैषज्यमगदो जायु रौषधम् । आयुर्योग गदाराति-

रमृत च तदुच्यते ।" अच्युत विष्णु, कौस्तुभमेतन्नामक विष्णोर्मणि, धन्वन्तरिणा देववैद्येन, गरुत्मता विष्णोर्वाहनेन सह अपि स्मरता स्मरण कुर्वता भेषज गृहीत सेवित स्याद् तर्हि दु ख किमस्ति, अर्थाद् स सर्वेभ्यो दु खेभ्य प्रमुच्यते । मालभारिणी वृत्तम् ।

यथा-"औषध जाह्नवीतोय वैद्यो नारायणो हरि " तन्त्रान्तरेष्वपि औषध-सेवनकाले भगवन्नामस्मरण निर्दिष्टम्—

धन्वन्तरिं गरुत्मन्त मणिराज च कौस्तुभम् ।
अच्युत चामृत चन्द्र स्मरेद् भैषज्यकर्मणि ॥

हिन्दी—हे कृशाङ्गी ! यदि रोगी औषधिसेवन काल में धन्वन्तरि और गरुड़ के साथ अमृत, विष्णु भगवान् तथा उनके कौस्तुभ मणि का स्मरण करे तो उसके सभी रोग शान्त हो जाते हैं । अर्थात् उसका कोई दुख शेष नहीं रहजाता ॥ ११ ॥

मूढवैद्यनिन्दामुपवर्णयन्, तन्निर्दिष्टौषधसेवननिषेधमाह—

न ग्राह्यं मूर्खभिषजो भेषजं प्राज्ञरोगिभिः ।
गृहीतं यदि कञ्जाक्षि ! जनयेत्तद् गदान्तरम् ॥ १२ ॥

व्याख्या—हे कञ्जाक्षि ! कमलनयने, प्राज्ञरोगिभिर्विवेकशीलैरातुरै, "प्राज्ञरोगिणो लक्षणं यथाह चरक —

प्राज्ञो रोगे समुत्पन्ने बाह्येनाभ्यन्तरेण वा । कर्मणा लभते शर्म शस्त्रोपक्रमणेन वा ॥
च सू अ ॥ १२ ॥",

मूर्खभिषजो भेषजमौषधं न ग्राह्य नैव सेवनीयम्, यथाह भगवान् अग्निवेश—
श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्राज्ञानबहिष्कृता । वर्जनीया हि ते मृत्योश्चरन्त्यनुचरा भुवि ॥
वृत्तिहेतोर्भिषक् मानपूर्णान् मूर्खविशारदान् । वर्जयेदातुरो विद्वान् सर्पास्ते पीतमारुता ॥
च सू अ २९ ॥

यदि रोगिणो मूर्खभिषज, औषधं सेवन्ते तर्हि तद् गदान्तरम् अन्य रोग मृत्यु वा जनयेद् । अनुष्टुप् छन्द ।

हिन्दी—हे कमलनयने ! विवेकशील रोगियों को चाहिये कि वे शास्त्र एवं चिकित्सा ज्ञानरहित मूर्ख चिकित्सक की औषधि का सेवन न करें । यदि वे सेवन करते है तो उससे दूसरे रोगों के होने की अथवा मृत्यु की सम्भावना रहती है ॥ १२ ॥

अथ चिकित्सादौ पथ्यस्यैव श्रेष्ठत्वमुपवर्णयति—

पथ्ये सति विकारस्य प्रतीकारो वृथा भवेत् ।
पथ्येऽसति विकारस्य प्रतीकारो वृथा भवेत् ॥ १३ ॥

व्याख्या—ग्रन्थकृता वैद्यजीवने प्रकारान्तरेणेदमेव पद्यमुपनिबद्धम् । मन्ये कविराजो लोलिम्बराजो गोमूत्रिकाबन्धदिशा पद्यमिदमुपन्यस्तवान् । द्वितीयाऽर्धेऽसतीति सन्धिच्छेदः ।

यदि रोगी पथ्याशी स्यात् तर्हि-अन्यच्चिकित्साया नास्ति किमपि प्रयोजनम्। यदि रोगी पथ्याशी नास्ति तथापि-अन्यच्चिकित्साकरण विफलमेव। यथोक्त चरकेण—

विनापि भेषजैर्व्याधि पथ्यादेव निवर्तते। नतु पथ्यविहीनस्य भेषजाना शतैरपि॥

आयुर्वेदशास्त्रीयपथोऽनपेत पथ्य "धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते" इति यत् प्रत्यय। विकारो रोग, प्रतीकार. शमनम्। अनुष्टुप् छन्द॥

हिन्दी—यदि रोगी पथ्य सेवन करता है तो उसको रोग की चिकित्सा कराने की आवश्यकता नहीं है। (क्योंकि पथ्यसेवी का रोग विना औषधिके ठीक हो जाता है) यदि रोगी पथ्यसेवी नहीं है तो उसके रोग की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, (क्योंकि पथ्य के विना औषधियों का पूर्ण प्रभाव रोगी पर नहीं पड़ता) अत' चिकित्सा के साथ-साथ पथ्य-सेवन की ओर अवश्य ध्यान देना एवं दिलाना चाहिये॥ १३॥

अथ लोलिम्बराज स्वग्रन्थ प्रशसयन्नाह—

इह गमिष्यति वैद्यमतिः श्रमं प्रथममेव पुरस्तु महासुखम्।
प्रियतमस्य नवीनसमागमे नवकरग्रहणा गृहिणी यथा॥१४॥

व्याख्या—इह-अस्मिन् चमत्कारचिन्तामणौ वैद्यमति भिषग्बुभूषु' प्रथममेव-अध्ययन-मननकाल एव श्रम खेद गमिष्यति, पुरस्तु तदनन्तर तु महासुखम् महत् च तत् सुखम् "आन्महत" इत्यादिसूत्रेणात्वम्। गमिष्यतीति वाक्योऽर्थ। प्रियतमस्य प्राणवल्लभस्य नवीनसमागमे विवाहानन्तर प्रथमरात्रौ कान्ताविनोदे नवकरग्रहणा नवपाणिग्रहणा गृहिणी पत्नी यथा प्राक् श्रम गच्छति पश्चात् सुखम् अनुभवति तद्वदिव। अस्मिन् पद्ये द्वितीय चरण दृष्टान्तरूपेणोपन्यस्त कविवरेण। द्रुतविलम्बितम्।

हिन्दी—उत्तम चिकित्सक बनने की इच्छावाले व्यक्ति को मेरे इस ग्रन्थ के अध्ययन में प्रारम्भिक कष्ट अवश्य होगा किन्तु बाद में वह सुख का अनुभव करेगा। जिसप्रकार नवविवाहिता पत्नी पति के प्रथम सगम काल में कष्ट का अनुभव कर बाद में प्रारम्भिक कष्ट से अधिक सुख का अनुभव करती है॥ १४॥

रोगाणाम्प्राबल्यमुपवर्णयन्नुपदिशति—

त्रैलोक्यस्य महेश्वरेण सकलज्ञानस्य पाथोधिना
रुद्रेणापि न शक्यते क्षपयितुं दुष्टः सुधांशोः क्षयः।
अस्माकं यदि शास्त्रकिञ्चनधियां स्वस्वामिनां नो प्रती-
कारः स्याद् गलितायुषां गुणिगणान्नो हानिरित्युच्यताम्॥१५॥

व्याख्या—त्रैलोक्यस्य लोकत्रयस्य महेश्वरेण महांश्चासौ ईश्वर. तेन सकलज्ञानस्य निगमागमविवेकस्य पाथोधिना समुद्रेण "कबन्धमुदक पाथ" इत्यमर। रुद्रेण शिवेन-

थपि सुधाशोश्चन्द्रमसो दुष्ट-असाध्यरूप' क्षयो राजयक्ष्मा क्षपयितु साधयितु न शक्यते। यदि गलितायुषा क्षीणायुष्मता शास्त्रकिञ्चनधिया शास्त्रज्ञाने किञ्चना स्वल्पा धीर्येषा तेषाम् न अस्माक स्वस्वामिना येषा वयम् आश्रितास्तेषा (च) गुणिगणाच्चिकित्सक-समाजात् प्रतीकार. स्वास्थ्यलाभ नो स्यात् "नह्य नो नापि" इत्यमर'। न भवेच्चेत् तर्हि नो हानिरित्युच्यताम् कापि चिन्ता न करणीयेत्यर्थ। अत्र साराश "नहि कर्म महत् किञ्चित् फल यस्य न भुज्यते", इतिशास्त्रमनुसृत्योदाहरणरूपेण प्रस्तूयते पद्यमिद ग्रन्थ-कृता। अत्र स्वगर्व परिहरन् वक्ति लोलिम्बराज -लोकत्रयस्य ईश्वर शिवोऽपि चन्द्रमस नीरुज कर्तुम् असमर्थस्तत्र के वय स्वल्पशास्त्रविद इति। शार्दूलविक्रीडितम्॥

हिन्दी—जब तीनों लोकों के स्वामी, सम्पूर्णज्ञान के समुद्र भगवान् शंकर चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग से मुक्त नहीं कर सके तब यदि छोटी आयुवाले शास्त्रों का सामान्य ज्ञान रखने वाले हमारा तथा हमारे स्वामियों का चिकित्सक वर्ग भली भाँति रोगों का प्रतीकार न कर सकें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं॥ १५॥

इति प्रस्तावना।

अथ ज्वराधिकारः

अथ सर्वरोगप्रधानत्वादादौ ज्वरमेवोपनिबध्यते—

यतः सर्वेषु रोगेषु प्रायशो बलवाञ्ज्वरः।
ततस्तस्य प्रतीकारं प्रथमं ब्रूमहे वयम्॥ १६॥

व्याख्या—सर्वेषु रोगेषु यतो यस्मात् कारणात् प्रायशो बाहुल्येन ज्वर बलवान् सबल प्रधानरूपेण भवतीति, ततस्तस्मात् कारणाद् वय तस्य ज्वरस्य प्रथम प्राक् प्रतीकार सशमनोपायम् ब्रूमहे, उपदिशाम। यथोक्त चरकेण—

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली। ज्वर प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा॥
रोगराट् सर्वभूतानामन्तकृद् दारुणो ज्वर'। तस्मात्तस्य विशेषेण यतेत प्रशमे भिषक्॥

वाग्भटोऽपि ज्वरस्याग्रजत्वं समर्थयति, तदित्थम्—

ज्वरो रोगपति पाप्मा मृत्युराजोऽशनान्तक। क्रोधो दक्षाध्वरध्वसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भव॥

एष ज्वरो न केवल मानवान् अपितु सर्वान् जन्तून् पीडयति, यथाह पालकाप्यो-हस्त्यायुर्वेदे महारोगस्थाने नवमाध्याये—

पालक' स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम्। गवामीश्वरसज्ञश्च मानवाना ज्वरो मत॥
अजावीना प्रलापाख्य करभे चालसो भवेत्। हारिद्रो महिषीणान्तु मृगरोगो मृगेषु च॥
इत्यादि।

हरिवशे ज्वरस्वरूपमाह—

ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिरा. षड्भुजो नवलोचन.। भस्मप्रहरणो रौद्र कालान्तकयमोपम'॥

हिन्दी—क्योंकि सभी रोगों में अधिकांश रूप से ज्वर की प्रधानता दिखाई देती है अतः हम सर्वप्रथम उसी की चिकित्सा का वर्णन करते हैं ॥ १६ ॥

ज्वरादौ लङ्घनप्रस्ताव —

आमाशये संस्थित आमसंयुतः स्रोतांसि सर्वाणि हुताशनं तथा।
निरुध्यदोषः कुरुते ज्वरं यतस्ततो विधेयं प्रथमं च लङ्घनम् ॥ १७ ॥

व्याख्या—ज्वरशामकेषूपायेषु लघनस्य प्राशस्त्यम्, तदेवाह—आमाशये सस्थित., आगत्य स्थित (स्था गतिनिवृत्तौ भावे क्त) दोषः वातपित्तकफात्मक — मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रया । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदा स्यू रसानुगा ॥ किं वा आमसयुत -आमदोषससृष्टो वातादिदोषो यत' सर्वाणि रसवाहीनि स्रोतांसि हुताशन पाचकाग्निं च निरुध्य ज्वर कुरुते, तत' तस्मात् प्रथमम् आदौ लङ्घन लघु भोजनम् अनशन वा प्रयोज्यम् ॥ इन्द्रवंशावृत्तम् ।

लघन विषयेशास्त्रकाराणान्मतानि—

लघनस्य परिभाषा— यत् किञ्चिल्लाघवकर देहे तल्लङ्घन स्मृतम् ॥

लघने हेतुमाह— आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन् ।
विदधाति ज्वर घोर तस्माल्लङ्घनमाचरेत् ॥ मै० २० ॥

तत्र चरक — ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात् ।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥

न सर्वे लङ्घनीया इति सुश्रुत.—न लघयेन्मारुतजे क्षयजे मानसे तथा ।
अलघ्याश्चापि ये पूर्वं द्विव्रणीये प्रकीर्तिता. ॥

लङ्घनस्य प्रमाणम्— प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रम' ॥

हिन्दी—जब वातादिदोष आमाशय में आकर रुक जाते हैं अथवा आमदोष से युक्त हो जाते हैं तब वे स्रोतों में रुकावट पैदाकर अग्नि को मन्द कर देते हैं, फलत' ज्वर की उत्पत्ति हो जाती है। अतएव दोष अथवा दोषों की शान्ति के लिये सर्वप्रथम रोगी को लंघन कराना चाहिये ॥ १७ ॥

वातानुलोमको वह्निदीपकञ्च योगः—

लाजाशुण्ठीकणामुस्तासैन्धवोशीरदाडिमैः ।
वातानुलोमनो मण्डो दीपयेदाशुशुक्षणिम् ॥ १८ ॥

व्याख्या—लाजा भृष्टधान्य, शुंठी नागर, कणा पिप्पली, मुस्ता घन', सैन्धव लवणम्, उशीर नलद, दाडिम च आभि ओषधिभि सिद्धो मण्डो वातानुलोमन करोति तथा पाचकाग्निं प्रदीपयति । अनुष्टुप् छन्द. ।

मण्डनिर्माणप्रकारः—

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः ।
शुण्ठी-सैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः ॥ शार्ङ्गधरे ।
मण्टपेयाविलेपीनामोदनस्य च लाघवम् ।
यथापूर्वं शिवस्तत्र मण्टो वातानुलोमनः ॥ वाग्भटे ।

हिन्दी—धान का लावा (खील), सोंठ, पीपल, नागरमोथा, सेन्धानमक, खस और दाडिम इनके द्वारा बनाया हुआ मण्ड (मांड) वायु का अनुलोमन तथा जठराग्नि का दीपन करता है।

मण्डनिर्माणविधि—रोगानुसार औषध से चौदह गुना जल में चावल आदि से बनाया हुआ सिक्थ (सीठी) रहित द्रव पदार्थ मण्ड कहा जाता है ॥ १८ ॥

तरुणज्वरे घृतसेवननिषेधमाह—

रुचिरोरुस्तनश्रोणि तरुणज्वरिणे घृतम् ।
परसंसर्गसंसक्तं कलत्रमिव साधवः ॥ १९ ॥

व्याख्या—रुचिरौ-ऊरू स्तनौ श्रोणि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे रुचिरोरुस्तनश्रोणि ! रत्नकले ! तरुणज्वरिणे आमज्वरयुक्तरोगिणे घृतं सर्पिर्न देयम् ! तरुणज्वरवान् रोगी तथा घृतसेवनं त्यजेद् यथा परसंसर्गसंसक्तं कलत्रं पुंश्चलीं स्त्रियं साधवः सत्पुरुषाः त्यजन्ति । अनुष्टुप् छन्दः ।

यथोक्तं शार्ङ्गधरसंहितायाम्—

अजीर्णी वर्जयेत् स्नेहमुदरी तरुणज्वरी । दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः ॥

हिन्दी—मनोहर जंघा, स्तन एवं कमर वाली रत्नकला, आमज्वर वाले रोगी को चाहिये वह घृत सेवन का वैसा ही त्याग करे जैसा व्यभिचारिणी स्त्री का सज्जन पुरुष त्याग कर देते हैं।

विशेष—मूल श्लोक में "सजन्तु ज्वरिणो" पाठ है, वास्तव में उसके स्थान पर "तरुणज्वरिणे" पाठ होना उचित है ॥ १९ ॥

ज्वरे पाचनम्—

भो भो पयोधरधराधरभारखिन्ने चेतोहरे सकलकामकले सुशीले ।
विश्वासवान्यबृहतीद्वयदेवकाष्ठैः स्यात्पाचनं प्रथमतो ज्वरनिर्जितानाम् २०

व्याख्या—भो भो इति सम्बोधनस्य द्विरुक्तिः, योगस्यास्य निःसन्देहसूचिका, पयोधरधराधरभारखिन्ने पयोधरौ स्तनौ एव धराधरौ पर्वतौ पीनोन्नतत्वात् तयोः भारेण खिन्ने व्यथिते; चेतोहरे मनोमोहकारिणि, सकलकामकले सम्पूर्णरतिक्रीडासुचतुरे, सुशीले शोभनं शीलं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, इत्थम्भूते रत्नकले ! विश्वा शुण्ठी सधान्यं धान्यकेन सहितं

बृहतीद्वय कण्टकारी युगल, देवकाष्ठ सुरदारु, आभिरौषधिभि सिद्धः क्वाथ. प्रथमतो ज्वर-निर्जिताना ज्वरमुक्तानां पाचन भवति। वसन्ततिलकावृत्तम।

शार्ङ्गधरसंहितायाम्— नागर देवकाष्ठ च धान्यक बृहतीद्वयम्।
दद्यात् पाचनकं पूर्वं ज्वरिनाना ज्वरापहम्॥

क्वाथनिर्माणविधि'— पानीय षोडशगुण क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत्।
मृत्पात्रे क्वाथयेत् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्॥
कर्षादौ तु पल यावद् दद्यात् षोडशक जलम्।
तज्जल पाययेद्धीमान् कोष्ण मृद्वग्निसाधितम्॥

क्वाथमात्रा— मात्रोत्तमा पलेन स्यात् त्रिभिरक्षैस्तु मध्यमा।
जघन्या च पलार्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च॥

पाचनस्य परिभाषा— यत्पचत्याममाहार पचेदामरम च यत्।
यदपकान्पचेद् दोषास्तद् विपाचनमुच्यते॥

हिन्दी—पर्वत के सदृश पीन और उन्नतस्तनों वाली, मन को वश में करने वाली, सम्पूर्ण काम-कला में कुशल, सुन्दर स्वभाव युक्त रतिकला, सोंठ, धनियां दोनों कटेरी, और देवदारु इनसे बनाया हुआ क्वाथ दोष-पाचन के लिये ज्वर-पीड़ितों को देना चाहिये।

विशेष—मूल में "विश्वापधानो" पाठ है, किन्तु यह अशुद्ध है और इसमें छन्दोभङ्ग दोष भी है। दूसरी बात-"ज्वरनिर्जितानाम्" पाठ भी इसमें भ्रामक है क्योंकि यह पाचन कारक योग ज्वर में आमदोष को पचाता है। यदि ज्वर ही शान्त हो गया तो फिर इसकी आवश्यकता ही क्या। हमारे विचार से इस पाठ को ऐसा होना चाहिये—

"विश्वासधान्यबृहतीद्वयदेवकाष्ठैः स्यात्पाचन प्रथमतो ज्वरिणां हिताय।"
यद्यपि चिकित्सक को अपने अनुभव के आधार पर योग परिवर्तन का पूर्ण अधिकार है, तथापि भ्रामक एवं अशुद्ध पाठों की निवृत्ति के लिये यह विचार किया गया है॥ २०॥

वातादिज्वरेषु कषाय'—

छिन्नौषधाम्भोधरधन्वयासैः किराततिक्ताम्बुदरेणुयासैः।
मुस्ताटरूषौषधधन्वयासैः क्वाथो मरुत्पित्तकफज्वरेषु॥ २१॥

व्याख्या—छिन्ना गुडूची, औषध शुण्ठी, अम्भोधरो मुस्ता, धन्वयासो दुरालभा चतुर्भिरेभिर्वातज्वरे क्वाथ। किरातो भूनिम्ब, तिक्ता कटुकी, अम्बुदो मुस्ता, रेणु. पर्पट. यासोयवास पञ्चभिरेभि पित्तज्वरे क्वाथ। मुस्ता मुस्तकम्, आटरूषो वासक, औषध, शुण्ठी, धन्वयासो दुरालभा चतुर्भिरेभि कफज्वरे क्वाथ। उपर्युक्तान्वय.

क्वाथा क्रमेण वातपित्तकफजज्वरेषु पाचनार्थं शस्ता । इमे त्रयो योगा सन्निपातज्वरिणे युगपदेव प्रयोज्या इति चरकाचार्यस्य मतम्—

बृहत्यौ वत्सक मुस्त देवदारुमहौषधम् । कोलवल्ली च योगोऽयं सन्निपातज्वरापहः ॥

शटी पुष्करमूलञ्च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा । गुडूची नागर पाठा किरात कटुरोहिणी ॥

अनुमीयते यत् ग्रन्थकृता सन्निपातोक्ता एते योगा स्वानुभवबलेन पृथक् पृथक् कृता. किञ्चिदपरिवर्धिना सहैव न्यूनतामपि गमिता । उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—गिलोय, सोंठ, नागरमोथा और धमासा इनका क्वाथ वातज्वर में, चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, पित्तपापड़ा और जवासा इनका क्वाथ पित्तज्वर में, तथा नागरमोथा, अडूसा, सोंठ और धमासा इनका क्वाथ कफज्वर में देना चाहिये ॥

विशेष—ये तीनों योग चरक चिकित्सास्थान मे वर्णित योग से कुछ घटा बढ़ाकर लिखे गये हैं। यह कार्य देश-कालज्ञ चिकित्सक अपने विवेकसे कर ही सकता है। यह क्वाथ दोषों का पाचन करने के साथ पिपासा की भी शान्ति करता है। यदि इसका प्रयोग सन्निपात ज्वर में करना हो तो तीनों योगों को मिलाकर करना चाहिये।

कुछ और—यह श्लोक लोलिम्बराज रचित वैद्यजीवन में भी इसी प्रकार उद्धृत है।

छिन्नोद्भवाम्भोधरधन्वयासैः किराततिक्ताम्बुदरेणुयासैः ।
विश्वावृषाम्भोधरधन्वयासैः क्वाथो मरुत्पित्तकफज्वरेषु ॥ वै० जी० ।

इसकी टीका लिखते हुए श्रीमद्यतिवर्य सुखानन्द जी लिखते हैं छिन्ना गुडूची, औषधं शुंठी, किन्तु यह औषधपद इस श्लोक में है ही नहीं, हाँ चमत्कार चिन्तामणि के इस पद्य में "छिन्नौषधाम्भोधर" पाठ अवश्य है। परन्तु यह पाठ व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है इसके स्थानपर "छिन्नौषधमम्भोधर" ऐसा पाठ होना चाहिये, किन्तु ऐसा करने पर छन्द भंग हो जाता है। हमारे विचार से "छिन्नोद्भवाम्भोधरधन्वयासैः" वैद्यजीवन के पाठ को ही ठीक मान लेना चाहिये। किन्तु गुणों की दृष्टि से वातज्वर नाशक योग में सोंठ को रखना ही चाहिये। अत यह समस्या उक्त पाठ को इस प्रकार बदल लेने से सुलझ जायगी "छिन्नौषधं मुस्तक धन्वयासैः" ॥ २१ ॥

सर्वज्वरेषु सामान्य कषाय —

पयोवाहभूनिम्बकोशीरकाणां स्थिरासिंहिकायुक्कलस्यौषधीनाम् ।
गुडूची-त्रिकण्ट-प्रयुक्तः कषायो नरं सज्वरं निर्ज्वरं चर्करीति ॥२२॥

व्याख्या—पयोवाहो मुस्ता, भूनिम्ब किरात, उशीरो नलद, स्थिरा शालपर्णी, सिंहिकायुक् कण्टकारीद्वयम्, औषध शुण्ठी, कलशी पृश्निपर्णी, गुडूची छिन्ना, त्रिकण्टो

गोक्षुरः, इत्याद्योषधीनाम् प्रयुक्त कषाय मज्वर ज्वरयुक्त नर निर्ज्वर ज्वररहित चकार ति । भुजङ्गप्रयातम् ।

हिन्दी—**नागरमोथा, चिरायता, खस, शालिपर्णी, दोनों कटेरी, सोंठ, पिठवन, गिलोय, गोखरू इन औषधियों से निर्मित इस (मुस्तादि) क्वाथ का सेवन करने से मानव ज्वररहित हो जाता है ॥ २२ ॥**

वातज्वरे कषाय—

विशालमालूरकुचाभिरामे सुपल्लवे वल्लरि काञ्चनस्य ।
दिलीपपत्नीचरणौ विमोक्षो लोको हनूमज्जनके ज्वरे स्युः ॥ २३ ॥

व्याख्या—विशालमालूरकुचाभिरामे, बृहद्बिल्वसदृशरमणीयवक्षोजशालिनि ! सुपल्लवे शोभनचरणैकदेशे किंवा शोभनचैलप्रान्ते, काञ्चनस्य वल्लरि गौरवर्णवति ! दिलीपपत्नी मागधी तस्याश्चरणौ मूल, विमोक्षो गुडूची लोको विश्व = शुण्ठी, हनुमतो जनकः पिता पवनस्तत्सम्बद्धे ज्वरे एषः कषाय प्रयोज्य', 'बिल्व शाडिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि ।' अभिनवनिघण्टु. । पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा । अभिनवनिघण्टु. । उपजातिवृत्तम् ।
अष्टाङ्गहृदये चिकित्सास्थाने ज्वरचिकित्साप्रकरणे वातज्वरे कषाय.—

अथवा पिप्पलीमूल गुडूची विश्वभेषजम् ॥ वाग्भटे ॥

हिन्दी—**बेल के सदृशस्तन, सुन्दर चरण तथा गौर वर्ण वाली प्रियतमा पिप्पलमूल, गिलोय और सोंठ का क्वाथ वातज्वर का शमन करता है ॥ २३ ॥**

वातपित्तज्वरे पञ्चभद्र. कषाय.—

छिन्नोद्भवापर्पटवारिवाहभूनिम्बशुण्ठीजनितः कषायः ।
समीरपित्तज्वरजर्जराणां करोति भद्रं खलु पञ्चभद्रः ॥ २४ ॥

व्याख्या—छिन्नोद्भवा गुडूची, पर्पट. तिक्त, वारिवाहो मुस्ता, भूनिम्बः किरातः शुण्ठी महौषधम्, आभिरोषधिभिर्निर्मित कषाय समीरपित्तज्वरजर्जराणा वातपित्तज्वरपीडिताना मानवानाम् एष पञ्चभद्राभिधो योग. खलु निश्चयेन भद्रम् उपकार करोति । उपजाति' । शार्ङ्गधरसंहितायामपि तथैव—

पर्पटाब्दमृताविश्वकैरातै. साधित जलम् । पञ्चभद्रमिद ज्ञेय वातपित्तज्वरापहम् ॥

हिन्दी—**गुडूची, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ इनका क्वाथ वातपित्तज्वर में देना चाहिये । इस क्वाथ का नाम पञ्चभद्र है ॥ २४ ॥**

ज्वरे तापनाशको योग —

अनन्तादिं भजेत्तावद् यावत्तापः प्रशाम्यति ।
संशयो नैव कर्तव्यः सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥ २५ ॥

व्याख्या—अनन्तागणोक्त क्वाथ तावत्सेवनीयो यावत् तापस्य शान्तिर्न स्यात्। अस्मिन् योगे सन्देहो नैव कर्तव्य इति अहं पुन पुन' सत्य वच्मीति शेष.। यथाह सुश्रुत — उत्तरतन्त्रे—

अनन्ता वालक मुस्ता नागर कटुरोहिणीम्। सुखाम्बुना प्रागुदयात् पाययेताक्षसम्मितम्॥
एप सर्वज्वरान् हन्ति दीपयत्याशु चानलम्॥ सु० उ०॥

ग्रन्थान्तरेष्वपि-अनन्तादियोगो वर्णित। अनुष्टुप् छन्दः।

हिन्दी—अनन्तादिक्वाथ-(सारिवा, सोंठ, कुटकी, नेत्रबाला, नागरमोथा) का सेवन तबतक करना चाहिये जबतक ज्वरजनित ताप की शान्ति न हो जाय। यह शत-प्रतिशत सफल प्रयोग है। इसके सम्बन्ध में सन्देह नहीं करना चाहिये। मैं (लोलिम्बराज) सत्य कह रहा हूँ॥ २५॥

पित्तज्वरे पर्पटज- कषाय —

स्वयमेव च पैत्तिकं ज्वरं शमयेत् पर्पटजः कपायकः।
यदि चन्दनसेव्यनागरैः सहितः किं पुनरत्र चिन्तया॥ २६॥

व्याख्या—पर्पटज. तिक्ताज कषाय. "स्वार्थ क" स्वयमेव एकल पैत्तिक पित्तोद्भव ज्वर शमयेत्। यदि चन्दन रक्तचन्दनम्, "कपायलेपयो प्राय प्रयोज्य रक्तचन्दनम्", सेव्यम् अमृणालं, नागर शुण्ठी, आभिरोपधिभिर्युक्त पर्पटज, कपायो रोगिणे प्रयुज्यते चेत् तर्हि पुनरत्र चिन्तया किम् अपितु नैव चिन्ता कर्तव्येति। सेव्यस्य पर्याया —

वीरणस्य तु मूल स्यादुशीर नलद च तत्। अमृणाल च सेव्य च समगन्धिकमित्यपि॥
अभिनवनिघण्टु।

प्रसिद्धतमोऽय योग सर्वैरपि प्रयुक्त, यथा भैपज्यरत्नावल्याम्—

एक पर्पटक-श्रेष्ठ पित्तज्वरविनाशने। किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरै॥

शार्ङ्गधरसहितायाम्-शुण्ठ्या स्थाने नेत्रबलाया प्रयोग कृत। चक्रपाणिस्तु तमेव योग समर्थयति चक्रदत्ते। वियोगिनीवृत्तम्,

हिन्दी—केवल पित्तपापड़ा का क्वाथ पित्तज्वर का शमन कर देता है, यदि इसमें लालचन्दन, खस और सोंठ भी मिला दिये जाय, तो इसकी सफलता में फिर किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता।

विशेष—केवल शार्ङ्गधर सहितामें सोंठ की जगह नेत्रबाला का प्रयोग किया गया है। शेप योग में कोई अन्तर नहीं है। हमारी सम्मति से "नागरैः" के स्थान पर "वालकै" पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। जरा इनके गुणधर्मों पर विचार करें—नेत्रबाला-वालक शीतलं रूक्षं लघु दीपनपाचनम्।

सोंठ—शुण्ठी रुच्याऽमवातघ्नी पाचनी कटुकाऽलघुः।
स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत्॥ २९॥

अथ प्रकारान्तरेण पित्तज्वरशान्तिप्रकार वक्ति—

मायुश्च मदकृद् वायुर्ज्वलन्मणिमनोहरे।
रेवातीरे यतो वेणुक्वाणोस्त्यत्र हृतव्यथः॥ २७॥

व्याख्या—ज्वलन्मणिमनोहरे भास्वरमणिवच्चेतोहरे। यतोऽत्र रेवातीरे रेवानद्यास्तटे मदकृद् वायु मादक पवन वेणुक्वाण वशीनिक्वण च हृतव्यथ हृता दूरीकृता व्यथा पीडा येन स अस्ति, अत इमौ वायुक्वाणौ मायु पित्त (तज्जनिता व्यथा च) च हरत इति निर्गलितोऽर्थ। अनुष्टुप् छन्द।

हिन्दी—मणिके समान कान्ति वाली प्रिया रेवानदी के तट पर बहने वाली शीतल वायु और वीणाध्वनि सभी प्रकार की व्यथायें दूर करती हैं, अतः ये दोनों पित्तज दाह को भी दूर करती है॥ २७॥

दाहवमीहरकषाय —

जलजजलजवाहं हरहरहरति ज्वरम्।
प्रवलनिदाघवमी निपीयमानं प्रिये नूनम्॥ २८॥

व्याख्या—जलजम् उशीर, जलजवाहो मुस्ता, एतयो क्वाथ श्रुत ज्ल निपीयमान सद् हरहरेति वाक्ययोजना, हे प्रिये! प्रबल वेगवन्त निदाघ दाहज्वर वमि छर्दिरोगश्च नून हरति। अत्र केचित् प्रथम जलजपदेन-गुडूचीं द्वितीय-जलजपदेन बालक स्वीकुर्वन्ति। एतदपि युक्तियुक्त प्रतीयते। अत्र जलशब्देन गुडूचीग्रहणे हेतु —

जलस्यापरपर्याय अमृत, गुडूची अमृतेति नाम्ना प्रसिद्धा। यथाह चक्रपाणि —

विश्वाम्बुपर्पटोशीर-घनचन्दनसाधितम्। दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत्॥

हिन्दी—हे प्रिये! प्रबल दाहज्वर तथा छर्दि रोग में खस और नागरमोथा के क्वाथ का सेवन करने से अवश्य ही रोग शान्ति में सफलता प्राप्त होती है॥२८॥

पित्तकफज्वरचिकित्सा—

लोहितचन्दनपद्मकधान्यच्छिन्नरुहापिचुमन्दकषायः।
पित्तकफज्वर दाह पिपासा छर्दिविनाशहुताशकरः स्यात्॥ २९॥

व्याख्या—लोहितचन्दनादीना कषाय पित्तकफज्वरदाहपिपासाछर्दिविनाशक - अग्निदीपक च भवति। तद्यथा—लोहितचन्दन रक्तचन्दनम्, पद्मकम् पद्मकाष्ठ, धान्य धन्याक, छिन्नरुहा गुडूची, पिचुमन्दो निम्ब, पञ्चानामेतेषां क्वाथो लाभकृद् भवति। उक्तञ्च चक्रपाणिना चक्रदत्ते—

गुडूची निम्बधन्याक पद्मक चन्दनानि च। एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः॥
हृल्लासारोचकच्छर्दि पिपासादाहनाशन॥

अत्र क्वाथे मधुनिक्षेपणमपि वैद्यानाम्मतम्। यथाह शिवदास —"अत्र अत्यन्तदाहपिपासाया वृद्धा. शीतीकृत्य मधु निक्षिपन्ति, तत्त्वचन्द्रिका। दोधकवृत्तम्।

हिन्दी—लालचन्दन, पद्मकाष्ठ (पद्माख), धनियाँ, गिलोय, नीम की छाल इनका क्वाथ पित्तकफज्वर, दाह (जलन), प्यास, वमन रोगों को शान्तकर अग्नि का दीपन करता है।

विशेष—कुछ वैद्य इस क्वाथ में शीतल होने पर मधु मिलाते हैं। यह मधु मिश्रित क्वाथ प्यास को पूर्णतया शान्त करता है। इस पद्य के मूल पाठ में चतुर्थ पाद इस प्रकार है—"तृषाग्निशमानविशेषात्" इसके स्थान पर "विनाशहुताशकरः स्यात्" परिवर्तन किया गया है। पाठक औचित्य तथा पाठ की शुद्धाशुद्धि को ध्यान में रखकर उपयोगी पाठ को अपनाने का कष्ट करें॥ २९॥

दाहे घृताभ्यङ्ग —

सहस्रधौतेन घृतेन कर्तुरभ्यङ्गमोपः कृशतां बिभर्ति।
अन्याङ्गनासङ्गमसादरस्य स्वीयेषु दारेषु यथाभिलाषः॥ ३०॥

व्याख्या—सहस्रधौतेन घृतेन सहस्रवार प्रक्षालितेनाज्येन, अभ्यङ्गम् मर्दन कर्तु पुरुषस्य, ओप दाह (उप दाहे) कृशता क्षीणता बिभर्ति यातीत्यर्थ.। तत्रोदाहरणमुपस्थापयति—अन्याङ्गनासङ्गमसादरस्य अन्याङ्गना परयोषित् तस्या सगमे सादर प्रवृत्तः तस्यैवम्भूतस्य कामुकस्य यथा स्वीयेषु दारेषु निजासु पत्नीषु यथा अभिलाष इच्छा इव। यथाह भगवानात्रेय चरके—

सहस्रधौत सर्पिर्वा तैल वा चन्दनादिकम्। दाहज्वरप्रशमनम् ॥
च चि अ ३॥

हिन्दी—जिस प्रकार परस्त्रीगामी पुरुष का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम क्रमशः घटने लगता है ठीक उसी प्रकार हजार बार धोए हुए घी का अभ्यङ्ग (मालिश) करने से दाह घटने लगता है॥ ३०॥

पित्तज्वरे द्राक्षादिक्वाथ —

द्राक्षारग्वधयोः क्वाथः पीतः पित्तज्वरापहः।
पर्पटाब्दामृतातिक्तायुक्तश्चेत् किं सुधा ततः॥ ३१॥

व्याख्या—द्राक्षा मृद्वीका, आरग्वध कृतमाल, एतयो क्वाथ पीत सेवितश्चेत् पित्तज्वरापह पित्तज्वर विनाशयति। यदि अस्मिन्नेव योगे पर्पट तिक्तम्, अब्दा मुस्ता, अमृता हरीतकी, तिक्ता कुटकी एतद् भेषजचतुष्टयस्यापि मिश्रण भवेत् तर्हि सुधाया अपि प्रयोजनं नास्ति। अनुष्टुप् छन्दः। यथाह—चक्रपाणि चक्रदत्ते—

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ता क्राथ· सशम्पाकफल विदध्यात् ।
प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोपतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु ॥

हिन्दी—मुनक्का और अमलतास का क्वाथ पीने से पित्तज्वर दूर हो जाता है। यदि इस योग में पित्तपापड़ा, नागरमोथा, हरीतकी और कुटकी मिला दी जाय तो यह अमृत से भी अधिक लाभदायक हो जाता है। अर्थात् इसके गुणों के सम्बन्ध में सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ दाहप्रतीकारप्रकरणम्—

अतिमञ्जुलवञ्जुलानिलैरलिनीसंकुलचञ्चलोत्पलैः ।
जलकेलिकलाकुतूहलैरपि पित्तज्वरजा रुजो जयेत् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अतिमञ्जुलवञ्जुलानिलै· अतिमञ्जुलश्चासौ वञ्जुलानिल तै अत्यन्तरमणीयैरशोकवायुभि, अलिनीसकुलचञ्चलोत्पलै अलिनीभिः भ्रमरीभि सकुलै व्याप्तै अतएव चञ्चलोत्पलै आन्दोलितपद्मै·, जलकेलिकलाकुतूहलै जलस्य केलि क्रीडा सा एव कला कौशल तत्सम्बन्धिकुतूहलै· कुतुकै एभिरुपादानै· पित्तज्वरजा पित्तज्वरसम्बन्धिन्यो रुज पीडा शम यान्ति । वियोगिनी वृत्तम् । चरकेऽपि—

नद्यस्तडागा पद्मिन्यो ह्रदाश्च विमलोदका । अवगाहे हिता दाहतृष्णाग्लानिज्वरापहा ॥
शीतानि चान्नपानानि शीतान्युपवनानि च । वायवश्चन्द्रपादाश्च शीता दाहज्वरापहा ॥
च. चि अ ३ ॥

हिन्दी—अशोक वृक्ष की मनमोहक शीतल मन्द-सुगन्ध वायु से, भौंरों के मडराने के कारण झूमते हुए कमलों से और उत्सुकता एवं कलापूर्ण जलक्रीडाओं से पित्तज्वरजनित दाह की शान्ति होती है।

विशेष—इस पद्य में ग्रन्थकर्ता का आशय यह प्रतीत होता है कि दाह की शान्ति के लिये रोगी को ऐसे बगीचे में रखा जाय जहाँ चारों ओर अशोक वृक्ष लगे हों, बीच में बावड़ी हो और उसमें कमल खिले हों ॥ ३२ ॥

सुकलत्रकलत्रपुत्रमित्रैः सुचरित्रैर्जलयन्त्रकैर्विचित्रैः ।
सरसीसरसीरुहैरुदारैरतिदाघस्य निवर्तनं प्रकुर्यात् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—सुकलत्रकलत्रपुत्रमित्रै सुशोभन कलत्र श्रोणि यस्य तत् इत्थभूत यत् कलत्र स्त्री तत् च पुत्र च मित्र च तै·, सुचरित्रै देवतोपासनादिसच्चरित्रै, विचित्रै विभिन्नप्रकारकै, नैर्जलयन्त्रकै धारागृहै, सरसी कासार, सरसीरुहै कमलै, उदारै· प्रशस्तै, अतिदाघस्य तीव्रदाहज्वरस्य निवर्तन समापन प्रकुर्यात् । 'कटि—श्रोणि ककुद्मती', 'कलत्र श्रोणि भार्ययो ।' 'कासार' सरसी सर· ।' सर्वत्राप्यमर । मालभारिणी वृत्तम् ।

दाहोपशमनोपाय चरके—

प्रिया प्रदक्षिणाचारा प्रमदाश्चन्दनोक्षिता । सान्त्वयेयु परं कामैर्मणिमौक्तिकभूषणा ॥
च चि अ ३ ॥

हिन्दी—कृशोदरी स्त्रियों, योग्य पुत्रों, हितैषी मित्रों, देवतोपासनादिसच्चरित्रों, विविध प्रकार के फुहारे वाले घरों, विकसित कमलों तथा सुशोभित सरोवरों के सेवन से तीव्रदाह शान्त हो जाता है ॥ ३३ ॥

लीलावलोकनविलोलविलोचनानाम्-
मुक्तालताऽऽकुलकुचस्थलमञ्जुलानाम् ।
सन्दिग्धमुग्धवचसां सुविलासिनीनाम्-
आलिङ्गनं सकलदाहमपाकरोति ॥ ३४ ॥

व्याख्या—लीलावलोकनविलोलविलोचनाना लीलया हावभावादिकेन अवलोकन प्रेक्षण तत्र विलोले चञ्चले विलोचने नेत्रे यासां तासाम्, पुन कीदृशीना मुक्तालताऽऽकुलकुचस्थलमञ्जुलानाम् मुक्तालताभि मौक्तिकमालाभि आकुलाव्याप्ता कुचस्थली स्तनपरिधि अतएव मञ्जुला सुन्दर्य यासा तासाम्, पुन कीदृशीना सन्देहेन युक्त सन्दिग्धम् अतएव मुग्ध मनोहर वच वचन यासा तासाम् सुविलासिनीना लीलावतीना यद् आलिंगनम् उपगूहन तद् पित्तज्वरजनित सकलदाह गात्रसन्तापम् अपाकरोति निवारयति । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

हिन्दी—स्नेहपूर्ण चञ्चल दृष्टिवाली, मोतियों की मालाओं से सुशोभित स्तनोंवाली, सकोचवश थोड़ा बोलने वाली, प्रगल्भ एवं प्रियतमा नायिकाओं का आलिंगन सभी प्रकार के सन्ताप को दूर करता है ॥ ३४ ॥

सरसीकमलं गतपङ्कमलं विलसत्कमलम्प्रसरत्कमलम् ।
हृतशोकमलङ्घ्यधनं किमलं सकलं न निराशितुमोषभरम् ॥३५॥

व्याख्या—सरसी तडाग तस्य कमल जल, गतपङ्कमलम् पङ्कमलेन रहित, विलसत्कमल विलसन्ति कमलानि यत्र तद् सुशोभितपङ्कजम्, प्रसरत्कमल प्रसरत्कान्तिमत्, हृतशोक शोकरहितम्, अलङ्घ्यधनम् पर्याप्तवित्तत्वम् एतत् सकलम् ओषभर दाहसमूह निराशितु दूरीकर्तुं किं न अलम् पर्याप्त नास्ति ? अपितु वर्तते एव । तोटकवृत्तम् ।

हिन्दी—कमलों की शोभा से सुशोभित सरोवर का कीचड़रहित निर्मल जल, शोक का अभाव और इच्छानुसार धन, क्या ये पदार्थ दाहसमूह का विनाश नहीं कर सकते ? अर्थात् इनके रहते हुए दाह उत्पन्न ही नहीं हो सकता ॥ ३५ ॥

यदा रसालोऽपि वरीवृतीति यदा मयूरोऽपि नरीनृतीति ।
यदा समीरोऽपि सरीसरीति तदा निदाघस्तु मरीमरीति ॥ ३६ ॥

व्याख्या—यदा रसाल आम्रफलम् (अत्र रसालशब्द फलाय प्रयुक्त न तु वृक्षाय) अपि वरीवृतीति अतिशयेन वर्तते, यदा मयूरोऽपि नीलकण्ठोऽपि "मयूरो बर्हिणो बर्हा नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्" अमर.। नरीनृतीति अतिशयेन नृत्यति। यदा यस्मिन् काले समीरो जगत्प्राण सरीसरीति, अतिशयेन वहति, तदा तस्मिन् काले निदाघस्तु ऊष्मा मरीमरीति नून विनश्यति। वर्षारम्भकालस्यैतदवर्णन, तदानीं स्वयमेव निदाघशान्तिर्जायते। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

हिन्दी—जब आम पकने लग जाँय, मयूर प्रसन्न होकर नाचने लगें और शीतल हवा पर्याप्तरूप में बहने लगे तब गर्मी एकदम शान्त हो जाती है ॥ ३६ ॥

यदि मृगाङ्कमुखी मुखदृग्वपुः सुखकरेण करेण परामृशेत्।
श्रमनिदाघतृषां निकरस्तदा ज्वरवतो लवतः किमु संव्रजेत् ॥३७॥

व्याख्या—यदि मृगाङ्कमुखी चन्द्रवदना प्रियतमा सुखकरेण आनन्ददायकेन करेण करपल्लवेन मुख च दृक् च वपु च एतेषा समाहार मुखदृग्वपु "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्" इत्यनेन एकवद्भाव। शरीराङ्गानि परामृशेत् स्पृशेत् चेत् तदा श्रमश्च निदाघश्च तृट् च तासा परिश्रमोष्मपिपासाना निकर. समूह ज्वरवतो मानवस्य लवत सर्वमपि सव्रजेत् किमु नास्त्यत्र सन्देहलेश। द्रुतविलम्बितवृत्तम्।

हिन्दी—यदि चन्द्रमुखी नायिका अपने सुखदायक करकिसलय से दाहपीडित रोगी के मुख, आंख तथा देह का स्पर्श करती रहे तो थकावट, दाह, पिपासा का सम्पूर्ण कष्ट शान्त हो जाता है।

विशेष—"लवतः" के स्थान पर 'तरसा' पाठ होना चाहिये। प्रकारान्तर से दोनों ही पाठ उपादेय हैं ॥ ३७ ॥

उशीरशीतद्युतिशीतले यः क्षणे क्षणे तापमपाकरोति।
सौधानि धाराधरचुम्बितानि हारीणि गीतानि निशामुखानि ॥३८॥

व्याख्या—उशीर नलद शीतद्युतिश्चन्द्र तच्च स च तौ तयो इवशीतल यत् स्थल तत्सम्बुद्धौ, उशीरशीतद्युतिशीतले स्थले य दाहपीडित क्षणे क्षणे प्रतिक्षण तापम् अपाकरोति दूरीकर्तुं वाञ्छति सः धाराधरो मेघ तेन चुम्बितानि स्पृष्टानि सौधानि राजभवनानि हारीणि चित्ताकर्षकाणि गीतानि निशामुखानि सायकालिकदृश्यानि सेवेत। अत्र पद्ये-"सौधनि धाराधरचुम्बितानि" इत्यनेन कविना पर्वतीयप्रदेशवर्णनस्य सङ्केत कृत, तत्र वार्षिकेषु चतुर्षु मासेषु मेघा आभूमि अभिलुठन्तो नेत्रयो पुर जवनिकारूपेण समापतन्ति, अहं दर्शनीयं तद् दृश्यम्। उपजातिवृत्तम्।

हिन्दी—खस और चन्द्रमा की किरणों के समान शान्ति प्रदान करनेवाले हे प्रियतमा! जो दाहपीडित, रोगी प्रतिक्षण दाहपीडा का शमन करना चाहता

है, वह बादल से घिरे हुए भवनों, मनमोहक गीतों तथा सायंकालिक दृश्यों का सेवन करे।

विशेष—"सौधानि धाराधरचुम्बितानि" से ग्रन्थकर्ता का आशय शीत प्रदेशों (कारमीर, शिमला, मसूरी, नैनीताल आदि शीतप्रधान पर्वतीय स्थानों) से है। वहाँ उक्त पद्यांश का अर्थ बरसात के दिनों में सामने दिखाई देता है ॥ ३८ ॥

सरोजराजिराजिते रजोविरञ्जिताजिरे।
गृहे सुदीर्घिका प्रिये निदाघनाशकारिणी ॥ ३९ ॥

व्याख्या—सरोजराजिराजिते सरसि जातानि सरोजानि तेषां राजि पंक्ति' तया राजिते शोभिते रजोविरञ्जिताजिरे रजसा कमलपरागेण विरञ्जिते रागयुक्ते यस्मिन् गृहे अजिरे हर्म्याङ्गणे या सुशोभना दीर्घिका वापिका भवति हे प्रिये! सा निदाघनाशकारिणी दाह-शामिका भवतीत्यर्थ। अनुष्टुप् छन्द।

हिन्दी—कमलों की पंक्ति से सुशोभित तथा उसी के पराग से सुवासित घर के आँगन के समीप निर्मित बावड़ी के सेवन से निदाघ की शान्ति होती है।

विशेष—इसके मूलपाठ में चतुर्थ पाद "धावालकारिणी" अशुद्ध है। उसके स्थान पर "निदाघनाशकारिणी" संशोधित पाठ लिखा गया है ॥ ३९ ॥

सारिकाशुकयोः स्वर्णमये पिञ्जरपञ्जरे।
स्थितयोश्च कलालापाः परमानन्ददायिनः ॥ ४० ॥

व्याख्या—सारिका च शुक च तयो सारिकाशुकयो, पाणिनेः "अल्पाच्तरम्" इति-अनुशासनबलात्, अत्र शुकसारिकयो इति पाठ साधीयान्। स्वर्णमये सुवर्णरचिते पिञ्जरपञ्जरे पिञ्जर च तत् पञ्जर तस्मिन् पीतवर्णयुक्ते तदागारे स्थितयो निवसतो कला-लापा मधुरसम्भाषणानि परमानन्ददायिनो भवन्ति, अतएव शैत्यापादका शान्तिदाश्चे-त्याक्षिप्यते। अनुष्टुप् छन्द।

हिन्दी—सोने के पिंजड़े में बैठे हुए शुक-सारिका का प्रेमालाप अत्यन्त आनन्द सुख एवं शान्तिदायक होता है ॥ ४० ॥

हारेण गुणिना यस्य संगतिः सम्प्रजायते।
तस्य दाहः शमं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ ४१ ॥

व्याख्या—गुणिना हारेण मौक्तिकमालया यस्य दाहसन्तप्तस्य सगति सम्पर्क सम्प्र-जायते बोभवीति। तस्य दाह औष्ण्य शम शान्ति याति-अत्र विचारणा न कार्या। अनुष्टुप् छन्द।

हिन्दी—मोतियों की माला धारण करने से दाह का शमन होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

उल्लसल्लोलकह्लारे सुन्दरीजनसुन्दरे।
अगारे रुचिराकारे स्वापो दाघमपोहति ॥ ४२ ॥

व्याख्या—उल्लसल्लोलकह्लारे उत् ऊर्ध्वं लसन्ति लोलानि चञ्चलानि कह्लाराणि सन्ध्याविकासिशुभ्रसरोजानि यत्र, सुन्दरीजनसुन्दरे सुन्दरीजनैः रमणीभिः सुन्दरे रमणीये रुचिराकारे दर्शनसेवनादौ सुखकरे आगारे भवने स्वापः शयनं दाघम् ऊष्माणम् अपोहति दूरीकरोति। अनुष्टुप् छन्दः।

हिन्दी—बावड़ी के जल के ऊपर लहराते हुए श्वेत कमलों वाले तथा सुन्दरी नायिकाओं से विलसित सब भाँति सुखद गृह में शयन करने से दाहशान्ति होती है ॥ ४२ ॥

केदारः कुमुदं कान्ता केतकी काननं कथा।
ककारषट्कं सन्दिष्टं महादाहविनाशनम् ॥ ४३ ॥

व्याख्या—केदारः जलपूर्णक्षेत्रं, कुमुदं कैरवं, कान्ता प्रियतमा, केतकी सूचिकापुष्पं, काननं गृहारामः कथा सुहृज्जनानां वार्ताप्रवृत्तिः एतत् ककारषट्कम् महादाहविनाशनं सन्दिष्टम्। दाहशान्त्यर्थम् एतेषाम् प्रयोगाः पृथक् पृथक् ग्रन्थेषु प्राचुर्येण समुपलभ्यन्ते किन्त्वत्र कविना दाहशान्तिवर्णनव्याजेन अनुप्रासच्छटा प्रादर्शि। अनुष्टुप् छन्दः।

हिन्दी—जलपूर्ण खेत, विकसित कमलवन, प्रियासहवास, केवड़ा का फूल, घर का बगीचा, प्रियजनों के साथ वार्तालाप, क अक्षर से प्रारम्भ होने वाले इन उपरिलिखित छः वस्तुओं के निरन्तर सेवन से तीव्र से तीव्र दाह भी शान्त हो जाता है ॥ ४३ ॥

सल्लकीरुचिरमालतमालनारिकेललवलीकदलीभिः।
चञ्चलाभिरनिलेन वलेन कस्य दाहमपहन्ति न योगाः ॥४३॥

व्याख्या—सल्लकी गजभक्ष्या, यथाह भावप्रकाशे—'शल्लकी गजभक्ष्या च सुवहा सुरभी रसा। महेरुणा कुन्दुकी च वल्लकी च बहुस्रवा। गुणाः—शल्लकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसारजित्।' आदि। रुचिरञ्च तत् मालम् उन्नतभूतलं शीतत्वात् किं वा मालद्रुमः, तमालः तापिच्छः "तमालः शालवद् वेधो दाहविस्फोटनाशनः", भावप्रकाशः। नारिकेलः दृढफलम्, अस्य गुणाः—"विशेषतः कोमलनारिकेरं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदोषान्। तस्याम्भः शीतलं हृद्यम्", अभिनवनिघण्टुः। लवली सुगन्धमूला चञ्चलाभिः वायुनान्दोलिताभिः कदलीभिः प्रसूनेनोत्पन्नेन अनिलेन वायुना अर्थात् कोमलकदलीपत्रपवनेन, अभिरोपधिभिः कृता-

योगा अनेन इठाद कस्य दाहानस्य दाह न अपहन्ति, अर्थात् सर्वेषामपि दाहान् विनाशयन्तीत्यर्थ । स्वागतावृत्तम् ।

हिन्दी—सलई, मनोहर उन्नतप्रदेश, तमाल, नारियल, लवलीलता तथा केला के पत्तों से उत्पन्न शीतल वायु, इनके सेवन से किसकी दाहशान्ति नहीं होती॥४४॥

कुसुमसायकसायककोमले हरिणलाञ्छनलाञ्छनलोचने ।
कमलविष्टरविष्टरभूषिते हरति कस्य रुजं न शुकस्य वाक् ॥४५॥

व्याख्या—कुसुमसायकसायककोमले कुसुमसायक कामदेव, तस्य सायको बाण, पुष्पं तद्वत् कोमले ! हरिणलाञ्छनलाञ्छनलोचने हरिणलाञ्छन चन्द्र तस्य लाञ्छन हरिण, तस्य लोचनमिव लोचन यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, कमलविष्टरविष्टरभूषिते कमलविष्टरो ब्रह्मा तस्य विष्टर आसन कमल तेन भूषिते हे प्रियतमे ! (अनेन रत्नकलाया पद्मिनीनायिकात्वमवगम्यते) शुकस्य वाक वाणी कस्य रुज पीडा शोक दाह वा न हरति, अपितु सर्वस्यापि रुजं हरतीत्यर्थ । द्रुतविलम्बितम् ।

हिन्दी—पुष्प के समान कोमलाङ्गी, हरिण के समान चञ्चल नेत्रों वाली, और कमल के सदृश मनोहर रूपवाली रत्नकले ! शुक की वाणी किसकी दाहजनित पीड़ा को शान्त नहीं करती । अर्थात् सबकी पीड़ा को शान्त करती है ॥ ४५ ॥

शिशिरदीधितिदीधितिसंहतिः परिमलाऽऽकुलपेलवपल्लवाः ।
हृदयरञ्जनकोकिलकोकिलाकलकलश्रवणं च निदाघजित् ॥ ४६ ॥

व्याख्या—शिशिरदीधितिदीधिति शिशिरा शीता दीधितय किरणा यस्य सः चन्द्रमा तस्य दीधितीनां किरणाना या सहति समूह, परिमलाऽऽकुलपेलवपल्लवा परिमलेन परागेण आकुला व्याप्ता पेलवा मृदुला पल्लवा किसलयानि, हृदयरञ्जनकोकिलकोकिलाकलकलश्रवण हृदय रञ्जयतीति हृदयरञ्जन कोकिल, च कोकिला च कोकिले तयो, कलकलश्रवण कलरवाकर्णनम् एतत्त्रय निदाघो घर्मातप तस्य जित् जेता भवति, इति त्रयोदशभि पद्यैर्दाहशान्तिप्रकरण समाप्यते । द्रुतविलम्बितम् ।

हिन्दी—चन्द्रकिरणों का समूह, पुष्पपरागों से युक्त नवकिसलय और मन को लुभानेवाली कोयलदम्पति की सुरीली वाणी ये तीनों दाह शान्ति के प्रसिद्ध उपाय हैं ॥ ४६ ॥

पित्तज्वरे ग्रन्थकर्तु स्वानुभव —

पित्तज्वरे किं रसफाण्टलेपैः किं वा कषायैरमृतेन किंवा ।
पेयं प्रियायामुखमेकमेव लोलिम्बराजेन सदानुभूतम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—पित्तज्वरे पित्तजनिते ज्वरे रसफाण्टलेपै किं रस प्राणेश्वरवाडवादय, फाण्ट कषायभेद, यथाह फाण्टविधि —

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग् जलमुष्ण विनिक्षिपेत् ।
मृत्पात्रे कुडवोन्मान ततस्तु स्रावयेत् पटात् ॥
स स्याच्चूर्णद्रव· फाण्ट । शार्ङ्गधरे ।

लेपः यथा—विभीतफलमज्जाया लेपो दाहार्तिनाशन । शार्ङ्गधर । किंवा कषायैः दाहशामकैः क्वाथैः, क्वाथविधि· अस्मिन्नेवाध्याये २० तमश्लोकस्य टीकाया द्रष्टव्य । अमृतेन सुशीतलेन जलेन किम् , अर्थात् उपरिलिखिता सर्वे उपाया व्यर्था तस्मात् एक केवलम् प्रियाया प्रीणातीति प्रिया तस्याः मुख पद्मगन्धिवक्त्रमेव पेयम् आस्वादनीयम् यतो हि लोलिम्बराजेन ग्रन्थकर्त्रा सदानुभूतम् । एष विधि युवकेषु प्रशस्त बालवृद्धेषु निषिद्ध प्रियाया दुर्लभत्वात् , शर्करभावाद् वा । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—पित्तज्वर की चिकित्सा के लिये ग्रन्थान्तरों में बताये हुए रस, फाण्ट (चाय), लेप, क्वाथ आदि के प्रपञ्च में नहीं पड़ना चाहिये। इसके लिये वैद्यवर श्रीलोलिम्बराज का कथन है कि केवल अपनी प्राणप्रिया के अधर रस का पान करना चाहिये। यह ग्रन्थकार का अनुभूत योग है ॥ ४७ ॥

वातश्लेष्मज्वरे पञ्चकोलक्वाथ —

कृष्णाकृष्णामूलचव्याग्निविश्वैरेभिः सर्वैर्जायते पञ्चकोलम् ।
वातश्लेष्मद्वेपि धत्ते हुताशं मुग्धे कान्ते तन्वि सुभ्रु प्रसन्ने ॥४८॥

व्याख्या—कृष्णा पिप्पली कृष्णामूल पिप्पलीमूल, चव्य चविका, अग्निश्चित्रक विश्वा नागरम् एभि पञ्चभिर्मिलिते सति पञ्चकोलम् भवति । एतत् (एष पञ्चकोलक्वाथ) वातश्लेष्मज्वरद्वेपि वातकफज्वरस्य विनाशकर्तृ, हुताश धत्ते जाठराग्नि दीपयति, इति ग्रन्थस्याशय· । मुग्धे सरले, कान्ते प्रिये, तन्वि कृशोदरि, सुभ्रु शोभनभ्रूलते, प्रसन्ने प्रसादगुणयुक्ते, इत्यादीनि सम्बोधनानि स्वप्रियायै प्रयुक्तानि ग्रन्थकर्त्रा । शालिनीवृत्तम् । प्रसिद्धोऽय योग सर्वत्राप्येवविधो· दृश्यते । यथा—

पिप्पलीपिप्पलीमूल चव्यचित्रकनागरम् । दीपनीय स्मृतो वर्ग कफानिलगदापह ॥
पञ्चभि· कोलमात्रन्तत् पञ्चकोल तदुच्यते ॥ भैषज्यरत्नावली ॥

हिन्दी—प्रसन्नचित्त, सुन्दर भौंह, सरल स्वभाव एव पतली कमरवाली प्रिये ! पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता तथा सोंठ इन पाच द्रव्यों का संग्रह पञ्चकोल कहा जाता है। पञ्चकोल का क्वाथ वातश्लेष्मज्वर को शान्त करता है और अग्नि को दीप्त करता है।

विशेष—कोलपरिमाण—मागधमान के अनुसार—

माषैश्चतुर्भि· शाण· स्याद्धरण· स निगद्यते ।
टङ्क स एव कथितस्तद्द्वय कोल उच्यते ॥ शार्ङ्गधरसंहिता ।

चार माषा का एक शाण होता है, उसी का दूसरा नाम टंक अथवा धरण है। दो शाण का एक कोल होता है। इसी कोल प्रमाण के अनुसार ये पांचों द्रव्य लिये जाते हैं, अतएव इनको पञ्चकोल कहते हैं ॥ ४८ ॥

वातश्लेष्मज्वरं क्वाथमाह—

वालेऽवाले वालवालेऽवलेऽस्मै हृच्छूलामश्लेष्मवातज्वरेषु ।
मुस्तातिक्ताग्रन्थिपथ्याऽरुजानां क्वाथः सम्यग्दीपनः पाचनश्च ॥४९॥

व्याख्या—वाले युवति, अवाले बुद्धिमति, वालवाले कोमलकेशयुक्ते, अवले हे स्त्रि! अस्मै रोगिणे, हृच्छूलामश्लेष्मवातज्वरेषु हृत्पीडायाम् आमदोषयुक्तकफवातज्वरेषु मुस्ता मुस्तक, तिक्ता कुटकी, ग्रन्थि पिप्पलीमूलम्, पथ्या हरीतकी, अरुज आरग्वध —एतेषा क्वाथो देय । शालिनीवृत्तम् । एष क्वाथ सम्यक् प्रकारेणाग्निं दीपयति पाचन च करोति। ग्रन्थान्तरेषु योगोऽयम् आरग्वधादिकषायनाम्ना प्रसिद्धो लाभप्रदश्चास्ति । तद्यथा—

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता-हरीतकीभि क्वथित• कषाय ।
सामे सशूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ चक्रदत्त ।

हिन्दी—कोमल केशपाश वाली बुद्धिमती युवती प्रिये! इस रोगी को हृदय की पीड़ा में, आमदोषयुक्त कफवातज्वर में नागरमोथा, कुटकी, पीपरामूल, हरड़, अमलतास का क्वाथ देना चाहिये। यह क्वाथ अग्नि को प्रदीप्त कर भोजन को पचाता है। दूसरे ग्रन्थों में यह योग 'आरग्वधादि क्वाथ' के नाम से प्रसिद्ध है।

विशेष—इस श्लोक के तीसरे पाद का मूलपाठ इस प्रकार है—"मुस्तातिक्ता-ग्रन्थिपथ्या शरग्वेधानाम्" यह भूल प्रतिलिपिकर्ता की हो सकती है, यहाँ ग्रन्थकार का आशय दृष्टि में रखकर उक्त पाठ का इस प्रकार सशोधन किया गया है—"मुस्तातिक्ताग्रन्थिपथ्याऽरुजानाम्"। यह पाठ व्याकरण, छन्द तथा उपयोगिता की दृष्टि से शुद्ध है ॥ ४९ ॥

ज्वरकार्श्याय वह्निवृद्धये च क्वाथमाह—

कृष्णाद्रिकृष्णामलकीहरीतकीक्वाथे प्रपीते दिवसेषु सप्तसु ।
ज्वरः स्ववृद्धिं दहनाय यच्छति ज्वराय कार्श्यं दहनश्च यच्छति ॥५०॥

व्याख्या—कृष्णाद्रि शिलाजतु, कृष्णा पिप्पली, आमलकी धात्री, हरीतकी पथ्या, एतच्चतुष्टयस्य दिवसेषु सप्तसु सप्तमे दिवसे "अत्र निर्धारणे सप्तमी" क्वाथे प्रपीते सति ज्वर• स्ववृद्धिं दहनाय यच्छति ज्वरस्य तीव्रता दन्दह्यते, दहनो जाठराग्निश्च ज्वराय कार्श्यं यच्छति ज्वरमुत्तरोत्तर शिथिलयति। आयस लौहसम्भव शिलाजतु कृष्णाद्रिनाम्ना व्यवहृतमत्र तदेव सर्वश्रेष्ठ भवति । इन्द्रवंशावृत्तम् । यथा भावप्रकाशे—

लौह जटायुपक्षाभ तत्तिक्त लवण भवेद् । विपाके कटुक शीत सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥

सप्ताहानन्तर क्वाथसेवनस्य विधानम्—

ज्वरित षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम्। पाचन शमनीय वा कषाय पाययेत्तु तम्॥
मै० र० ॥

हिन्दी—शिलाजीत, पिप्पली, आंवला, हरीतकी, इनका क्वाथ सातवें दिन रोगी को देना चाहिये। इसके सेवन से अग्नि प्रदीप्त होकर ज्वर का शमन होता है। फलत. ज्वररोगी नीरोग हो जाता है॥ ५०॥

कफज्वरे वचादिक्वाथ —

उग्रापटोलत्रिफलावृषामृता-तिक्ताकषाये मधुना समन्विते।
पीने सति स्यात् ससुखः कफज्वरी नरः सकाम' प्रमदाधरे यथा॥५१॥

व्याख्या—उग्रा वचा, पटोल तिक्तक, त्रिफला फलत्रिक, वृषा वासा अमृता गुडूची, तिक्ता कुटकी एतेषा मधुना समन्विते क्षौद्रयुक्ते कषाये क्वाथे पीते सति कफज्वरी तथा ससुख सुखेन समन्वित स्यात् यथा सकाम नर कामी पुरुष प्रमदाधरे कामिन्या अधरामृते लब्धे सति भवतीत्याशय.। चक्रदत्ते योगोऽय त्रिफलादिकषायनाम्ना प्राप्यते, तद्यथा—

त्रिफलापटोलवासाच्छिन्नरुहा रोहिणी च षड्ग्रन्था।
मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूली-वासकस्य वा क्वाथ॥

तत्वज्ञानवता भिषग्वरेण लोलिम्बराजेन उत्तमोत्तमयोगेषु क्वापि परिवर्तन न कृतम्, अन्यत्र स्वानुभवबुद्धिबलाभ्यां यथायथं विपरिवर्तितम् इत्यस्माक द्रढीयान् विश्वास.। कफनाशार्थ पटोलस्य नाल ग्राह्यम्। यथा भावप्रकाशे—"नाल श्लेष्महरम्"। इन्द्रवंशावृत्तम्।

हिन्दी—घालवच, परवल की नाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अडूसा, गिलोय, कुटकी, इनके क्वाथ में शीतल होने पर मधु मिलाकर पीने से कफज्वर वाले को वैसा ही सुख मिलता है जैसा कामी पुरुष को अपनी प्रिय नायिका के अधर-रसपान से॥ ५१॥

कफज्वरे कण्टकार्यादिक्वाथ.—

व्याघ्र्यमृतौषधतोयदभार्ङ्गीधन्वयवाससमुत्थकषायः।
हन्ति कणारजसा कफजार्ति पुत्रइव प्रमदः पितृकीर्तिम्॥ ५२॥

व्याख्या—व्याघ्री कण्टकारी, अमृता गुडूची, औषध शुण्ठी, तोयदो मुस्ता, भार्ङ्गी भृगुभवा, धन्वयासो दु स्पर्श एतेषा क्वाथ कणा पिप्पली तस्या रजसा चूर्णेन समन्वित' तथा कफजार्ति कफदोषसमुद्भवा पीडा हन्ति विनाशयति यथा प्रमदो मदोन्मत्त पुत्र. पितृकीर्तिम् पितु समुपार्जित यश हन्ति। दोधकवृत्तम्।

ग्रन्थारम्भे ग्रन्थकर्त्रा प्रतिश्रुत यद् आयुर्वेदीयमहिताभ्य साररूपेण साहाय्यमङ्गीकृत्य मयाऽत्र किञ्चिल्लिख्यते तदेव सर्वत्र दृश्यते। क्वचिदविकलो योग' स्वभापाप्रौढया परिष्कृत्य समुपात्त कुत्रचित् आवश्यक द्रव्यादिपरिवर्तनञ्चापि कृतम् इति तदीयपद्यै स्पष्ट व्यज्यते। यथा अस्मिन्नेव पद्ये कतिपयद्रव्यनिरासपूर्वक कफज्वरोक्तो निम्बादिकाथः समुपन्यस्तो भिषग्वरेण लोलिम्बराजेन तद्यथा—

निम्बाशिवामृतादारुशटीभूनिम्बपौष्करम्। पिप्पल्यौ बृहती चेति क्काथो हन्ति कफज्वरम्॥

हिन्दी—कण्टकारी, गिलोय, सोंठ, नागरमोथा, भारंगी, जवासा इन द्रव्यों के क्काथ में पिप्पली का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से यह कफज्वर का उस प्रकार समूल विनाश कर देता है जिस प्रकार मदोन्मत्त पुत्र अपने पिता के सुयश का॥ ५२॥

अथ भाङ्ग्यादिकषाय —

भार्ङ्गीगुडूचीघनदारुसिंही-शुण्ठीकणापुष्करकैः कषायः।
ज्वरं निहन्ति श्वसनं क्षिणोति क्षुधां करोति प्ररुचिं तनोति॥५३॥

व्याख्या—भार्ङ्गी भृगुभवा, गुडूची अमृता, घनो मुस्ता, दारु देवदारु', सिंही कण्टकारी, शुण्ठी महौषध, कणा पिप्पली, पुष्करक पौष्करमूलम् एतेषा कषाय ज्वर निहन्ति विनाशयति, श्वसन श्वासरोग क्षिणोति शमयति, क्षुधा करोति बुभुक्षा दीपयति, प्ररुचि प्रकृष्टमन्नाभिलाष तनोति। उपजातिवृत्तम्।

हिन्दी—भारङ्गी, गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, कण्टकारी, सोंठ, पीपल, पोहकर मूल इनका क्काथ श्वासयुक्त ज्वर का शमन कर भोजन के प्रति इच्छा को उत्पन्न करता हुआ भूख को बढ़ाता है॥ ५३॥

कफपित्तज्वरे पटोलादिकाथ —

पिबति यः कुलकत्रिफलावचामधुकनिम्बयुतं मधुना तथा।
ज्वर उपैति शमं कफपित्तजो गणकरोपकृतो विभवो यथा॥५४॥

व्याख्या—कुलक पटोल, त्रिफला, फलत्रिक, वचा उग्रा, मधुको गुडपुष्प, निम्ब पिचुमर्द एतेषां मधुयुक्त क्काथ यो रोगी पिबति तस्य कफपित्तजज्वरस्तथा शान्तो भवति यथा गणकरोपकृतो ज्योतिर्विदस्तिरस्कारेण विभवो धनादिपदार्थ शान्तो विनष्टो भवतीत्यर्थ। द्रुतविलम्बितवृत्तम्। उक्तञ्च—

हतश्रीर्गणकान् द्वेष्टि हतायुश्च चिकित्सकान्। हतश्रीश्च हतायुश्च ब्राह्मणान् द्वेष्टि भारत॥
महाभारत॥

अधिकांशद्रव्याणां साम्यत्वादेष क्काथ पटोलादिकाथश्रेणीमधिरोहति।

हिन्दी—परवल की पत्ती, हरड़, बहेड़ा, आवला, थालवच, महुआ, नीम की छाल इनके क्वाथ का सेवन कफपित्तज्वर का इस प्रकार नाश करता है जिस प्रकार ज्योतिषी का अपमान करने से सम्पत्ति का नाश होता है ॥ ५४ ॥

रुचिकारक कषाय —

मम द्वयं विस्मयमातनोति रुचिं चरीकर्त्यरुचः कषायः ।
निपीडितोरोजसरोजकोशा योषा प्रमोदं प्रचुरम्प्रयाति ॥ ५५ ॥

व्याख्या—अरुच कटुकाया कषाय पित्तज्वरे रुचिं भोजनेच्छा चरीकर्ति प्रतनोति किं वा पित्तज्वरजनिता मुखतिक्तता दूरीकरोति । यथाह माधव·पित्तज्वरलक्षणेषु-"प्रलापो वक्त्रकटुतेत्यादि" । मुखस्य कटुना रुचेर्विनाश विधत्ते । निपीडितोरोजसरोजकोशा निपीडितौ अतिशयेन मर्दितौ उरोजौ एव सरोजकोषौ कुचकमले यस्या एवम्भूता सा योषा सीमन्तिनी प्रचुर प्रकाम प्रमोद मानसोल्लास प्रयात्यनुभवतीत्यर्थ । कटु पदार्थेन रुचे, कुचकमलयो पीडनेन सुखम्योत्पत्ति एतद् द्वय मम ग्रन्थकर्तु विस्मयम् आश्चर्यम् आतनोतीति कवेरभिप्राय । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—लोलिम्बराज कहते हैं कि मुझे निम्नलिखित दो बातों से महान् आश्चर्य होता है। एक तो यह कि कुटकी (स्वाद में अरुचिकारक) के काढ़ा से भोजन के प्रति रुचि बढ़ती है। दूसरा यह कि नवयुवती के स्तनरूपी कमलकोशों को हाथों से दबाने पर (जब कि वेदना का अनुभव होना चाहिये) वह प्रसन्नता का अनुभव करती है ॥ ५५ ॥

पिप्पलिपौष्करकट्फलशृंगी चूर्णकृतो मधुमानवलेहः ।
श्लेष्मतमस्तपनो ज्वररक्षोदाशरथिः कसनश्वसनघ्न. ॥ ५६ ॥

व्याख्या—पिप्पली कणा, पौष्कर पुष्करमूल, कट्फल कुम्भिका, शृङ्गी कर्कटशृङ्गी एतेषा चूर्णेन साधितो मधुमिश्रितोऽवलेह श्लेष्मरूपिणे तमसेऽन्धकाराय तपन सूर्य, ज्वररक्षसे ज्वरानुकारिणे राक्षसाय दाशरथि दशरथस्यापत्यम्पुमान् = राम तथा कसन कास श्वसन श्वासरोग एतेषा घ्न विनाशकरः । दोधकवृत्तम् ।

अवलेहनिर्माणप्रकार.— क्वाथादीना पुन पाकाद् घनत्व सा रसक्रिया ।
सोऽवलेहश्च लेह स्यात्तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥

तस्य परीक्षणम्— सुपक्वे तन्तुमत्व स्यादवलेहोऽप्सु मज्जति ।
स्थिरत्व पीडिते मुद्रा गन्धवर्णरसोद्भव ॥

हिन्दी—पिप्पली, पोहकरमूल, कायफल, काकड़ासिंगी इनके चूर्णों के योग से निर्मित मधुमिश्रित अवलेह कफजरोगरूपी अन्धकार के लिये सूर्य के समान,

ज्वररूपी राक्षस के लिये राम के समान विनाशकारी है। साथ ही यह अवलेह कास एवं श्वासरोग में भी लाभदायक है ॥ ५६ ॥

त्रिदोषज्वरे दशमूलादिक्वाथ.—

पञ्चाट्यद्वियपौष्करेन्द्रजशटीदुःस्पर्शराजीफलै-
स्तक्ताकर्कटश्टङ्गिभार्ङ्गिसहितैरेभिः कृतात् क्वाथतः।
हिक्कापार्श्वहृदर्तिवान्तिकसनश्वासत्रिदोषा अपि
प्रौढा यान्ति पराभवं खलु यथा वेदान्तिनस्तार्किकात् ॥५७॥

व्याख्या—पञ्चाड्द्वियम् उभयपञ्चमूल तत्र प्रथम—

बृहत् पञ्चमूलम्—	विल्वश्योनाकगम्भारीपाटलागणिकारिका । दीपन कफवातघ्न पञ्चमूलमिद महत् ॥
लघुपञ्चमूलम्—	शालिपर्णी-पृश्निपर्णी - बृहतीद्वय - गोक्षुरम् । वातपित्तहर वृष्य कनीय पञ्चमूलकम् ॥
एतयो फलम्—	उभयम्पञ्चमूलन्तु सन्निपातज्वरापहम् । कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥ चक्रदत्त ।

पौष्कर पुष्करमूलम्, इन्द्रज इन्द्रयव, शटी कर्चूर, दु स्पर्श. दुरालभा, राजीफल पटोल, तिक्ता कटुकी, कर्कटश्टंगी कुलीरविषाणिका, भार्ङ्गी भृगुभवा एतेषा क्वाथत. हिक्का, पार्श्वरुक्, हृत्पीडा, वान्ति वमन, कसन कास, त्रिदोष सन्निपातज्वर प्रौढता गता अपि एते रोगा तथा पराभव विनाश यान्ति यथा शास्त्रार्थे तार्किकात् नैयायिकाद् वेदान्तिन । यथैकस्मात् तार्किकाद् अनेके वेदान्तिन पराभव यान्ति तथैवैकस्मात् दशमूली-क्वाथाद् बहवो रोगा शम यान्तीति सम्पिण्डितोऽर्थ । अविकलोऽय योगश्चक्रदत्ते-अष्टादशाङ्गनाम्ना व्यवहृत. समुपलभ्यते । तद्यथा—

दशमूलीशटीश्टंगीपौष्कर सदुरालभम् । भार्ङ्गी कुटजबीजञ्च पटोल कटुरोहिणी ॥
अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापह. । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहर ॥चक्रदत्त॥

त्रिदोषाणा बहुविधत्वम्—

शीघ्रगस्तान्त्रिकश्चित्तविभ्रम कण्ठकुब्जक । कर्णको जिह्वकश्चैव रुग्दाहश्चान्तकस्तथा ॥
भुग्ननेत्रो विलापश्च प्रलाप शीतलागक । अभिन्यासश्चेति विधात् सन्निपातास्त्रयोदश ॥
माण्डवीये ।

चरकस्तु तानेव विभजते—

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वं त्रयोदशविधस्य हि । प्राक्सूत्रितस्य वक्ष्यामि लक्षण वै पृथक्-पृथक् ॥
भ्रम पिपासा दाहश्च गौरव शिरसोऽतिरुक् । वातपित्तोल्बणे विद्याल्लिङ्ग मन्दकफे ज्वरे ॥
शैत्य कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासादाहरुग्व्यथा । वातश्लेष्मोल्बणे व्याधौ लिङ्ग पित्तावरे विदु ॥

छर्दि शैत्य मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना । मन्दवाते व्यवस्यन्ति लिङ्ग पित्तकफोल्वणे ॥
सन्ध्यस्थिशिरस शूल प्रलापो गौरव भ्रम । वातोल्वणे स्याद्द्व्यनुगे तृष्णाकण्ठास्यशुष्कता ॥
रक्तविण्मूत्रता दाह स्वेदस्तृट् बलमक्षय । मूर्च्छा चेति त्रिदोषे स्याल्लिङ्ग पित्ते गरीयसि ॥
आलस्यारुचिहृल्लास - दाहवम्यरतिर्भ्रमै । कफोल्वण सन्निपात तन्द्रा कासेन चादिशेत् ॥
प्रतिश्याच्छर्दिरालस्य तन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् । हीनवाते पित्तमध्ये चिह्न श्लेष्माधिके मतम् ॥
हारिद्रमूत्रनेत्रत्व दाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचि । हीनवाते मध्यकफे लिङ्ग पित्ताधिके मतम् ॥
शीतको गौरव तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक् । हीनपित्ते वातमध्ये लिङ्ग श्लेष्माधिके विदु ॥
श्वास कास प्रतिश्यायो मुखशोषोऽति पार्श्वरुक् । कफहीने वातमध्ये लिङ्ग पित्ताधिके विदु ॥
च० चि० अ० ३ ॥

इत्येवमेतेषा भेदा पृथक् पृथक् चिकित्साग्रन्थेषु विहितास्तेऽत्र ग्रन्थविस्तरभयान्नोल्लिख्यन्ते । शार्दूलविक्रीडितम् ।

हिन्दी-दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल (बेल, सोनापाठा, गम्भारी, पाढल, अरणी, शालपर्णी (सरिवन), पृष्ठपर्णी (पिठवन), छोटीकटेरी, बड़ीकटेरी, गोखरू, पोहकरमूल, इन्द्रजौ, कचूर, दुरालभा, परवल की पत्ती, कुटकी, काकड़ासिंगी, भारगी इनके क्वाथ के सेवन से हिचकी, पसलियों का दर्द, हृदय की वेदना, वमन, कास, श्वास तथा सन्निपातज्वर उस प्रकार पराभव को प्राप्त हो जाते है (शान्त हो जाते हैं) जिस प्रकार शास्त्रार्थ में तर्कशास्त्र के विद्वानों से वेदान्ती। जिस प्रकार एक तर्कशास्त्र के विद्वान से अनेक वेदान्ती हार जाते हैं वैसे ही इस एक योग के सेवन से अनेक रोगों का शमन हो जाता है ॥ ५७ ॥

धनुर्वातादौ-अर्कादि क्वाथ —

अर्कग्रन्थिकशिग्रुदारुचविकानिर्गुण्डिकापिप्पली-
रास्नाभृंगपुनर्नवानलवचाभूनिम्बशुण्ठीकृतः ।
क्वाथो हन्ति धनुःसमीरणमपस्मारं प्रसूतिं चलान्
कृच्छ्रान् कृच्छ्रतरत्रिदोषदलन. शैत्यस्य विध्वंसनः ॥५८॥

व्याख्या—अर्क मन्दार , ग्रन्थिक पिप्पलीमूल, शिग्रु शोभाञ्जन, दारु देवदारु, चविका चव्य, निर्गुण्डिका भूतकेशी, पिप्पली मागधी रास्ना रसना, भृगो भगा, पुनर्नवा शोथघ्नी, नल पोटगल., वचा उग्रगन्धा, भूनिम्ब किरात , शुण्ठी विश्वा एतेषा क्वाथ धनु समीरण धनु - स्तम्भ ("धनुस्तुल्य नमेद् यस्तु स धनु स्तम्भसञ्ज्ञक " माधव) अपस्मार (चिन्ता शोकादिभिर्दोषा क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिता । कृत्वा स्मृतेरपध्वसमपस्मार प्रकुर्वते ॥ माधव.) प्रसूति सूतिकाज्वर कृच्छ्रान् कष्टसाध्यान् चलान् वातविकारान् कृच्छ्रतरत्रिदोषदलन कष्टसाध्यसन्निपातनाशक शैत्यस्य विध्वसन शीतताविनाशकश्च प्रदिष्ट । शार्दूलविक्रीडितम् ।

हिन्दी—मदार, पिपलामूल, सहजन, देवदारु, चव्य, सम्हालू, छोटी पीपल, रासना, भांग, पुनर्नवा, नल्द, वचा, चिरायता, सोंठ इन औषधियों से बना हुआ क्वाथ धनु स्तम्भ, अपस्मार, प्रसूतज्वर, कष्टसाध्य वातविकार, सन्निपातज्वर तथा सर्दी से होने वाले सभी विकारों का नाश करता है ॥ ५८ ॥

कामादिहर क्वाथ —

सुदति सुमुखि वाले चारुभाले सुचैले
नखलिखितकपोले कामकर्मानुकूले ।
दलयति दशमूली कृष्णया कण्ठहृद्दृक्
श्वसनकसनतन्द्रापार्श्वशूलत्रिदोषान् ॥ ५९ ॥

व्याख्या—सुदति शोभना दन्ता यस्या सा तत्सम्बुद्धौ सुमुखि रुचिरास्ये, वाले अप्राप्तपूर्णयौवने चारुभाले रम्यमस्तकवति, सुचैले—उत्तमवस्त्रावृते, नखलिखितकपोले कररुहक्षतयुक्तगण्डस्थले, कामकर्मानुकूले मदनक्रीडायोग्ये हे प्रियतमे ! (शृणु) कृष्णा-पिप्पली तया युक्तो दशमूली दशमूलानि सन्ति यस्या सा (बृहत्पञ्चमूल लघुपञ्चमूलञ्च) तस्या कषाय कण्ठपीडा, हृदयवदनां दृष्टिरोगान्, श्वसन श्वास, कसन कास, तन्द्रा, पार्श्वशूल त्रिदोषान् (त्रयोदशविधान् सन्निपातान्) च दलयति चूर्णीकरोति । मालिनीवृत्तम् ।

यथा भैषज्यरत्नावल्याम—उभय पञ्चमूलन्तु सन्निपातज्वरापहम ।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥
पिप्पलीचूर्ण सयुक्त कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥

हिन्दी—सुन्दर दांत, मुख, माथा, वस्त्र तथा नखक्षतों से युक्त कपोलों वाली एवं रतिक्रीडा योग्य सुन्दरी ! पिप्पली के चूर्ण से युक्त दशमूल का काढ़ा गला, हृदय, दृष्टि के रोगों, श्वास, कास, तन्द्रा, पसलियों के दर्द और सभी प्रकार के सन्निपातों को दूर करता है ।

विशेष—कण्ठ, हृदय, दृष्टि के रोग, श्वास, कास तन्द्रा, पार्श्वशूल ये जब सन्निपातज्वर के साथ उपद्रव के रूप में प्रकट होते हैं तब इस योग से लाभ होता है अथवा तब इसका सेवन करना चाहिये । जहां ये रोग स्वतन्त्ररूप से हों वहां इनकी पृथक् पृथक् चिकित्सा उस-उस प्रकरण में दी गई है ॥ ५९ ॥

सन्निपातस्यासाध्यत्वमाह—

त्रिदोषेण तुल्यः परेताधिराजः परेताधिराजेन तुल्यस्त्रिदोषः ।
परेताधिराजस्त्रिदोषैर्विजित्रस्तयोरेव साम्यं तयोरेव मन्ये ॥६०॥

व्याख्या—पद्यमिदं रचयता ग्रन्थकर्त्रा "उपमेयोपमाऽलङ्कार" मुखेन सन्निपातस्यासाध्यत्वमुपवर्णितम्—परेताधिराजोपम त्रिदोषेण सन्निपातेन तुल्यो मारकत्वात् परेताधि-

राजेन यमेन तुल्य' सम त्रिदोप सन्निपात, अत परेताधिराजो यम. त्रिदोपैर्विजित्रो विजेय । यतो हि तयोर्यमसन्निपातयो साम्य समानत्व यमसन्निपाताभ्यामेव सम्भाव्यम् इति मन्ये । भुजङ्गप्रयातम् । सन्निपातज्वरस्यासाध्यतां भयकरताञ्चवर्णयता मात्रमिश्रेण प्रतिपादितम् भावप्रकाशे—

नारायण एव भिषग्भेषजमेतेषु जाह्नवीतोयम् ।
नैरुज्यहेतुरेको नित्य मृत्युञ्जयो ध्येय ॥

अन्यच्च—

मृत्युना सह योद्धव्य सन्निपातचिकित्सुना ।
यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेताऽऽमयसङ्कुलम् ॥

हिन्दी—यमराज त्रिदोप के समान होता है और त्रिदोप यमराज के समान होता है, फिर भी त्रिदोप को जीतने से यमराज को जीतना सरल है । अत इन दोनों की तुलना इन्हीं दोनों से हो सकती है । अन्य किसी के साथ नहीं ॥ ६० ॥

सन्निपातनिवारकवैद्यप्रशसा—

यः सन्निपातसलिलाधिपतौ निमग्नाञ्-
जन्तून् समुद्धरति वैद्यपतिः स एव ।
तस्याश्वदान-गजदान-फलानि कां च-
पूजां न सोऽर्हति भणन्ति महान्त इत्थम् ॥ ६१ ॥

व्याख्या—यश्चिकित्सक सन्निपातसलिलाधिपतौ सन्निपात एव सलिलाधिपति समुद्रः तस्मिन् निमग्नान् सन्निपातज्वरग्रस्तान् जन्तून् प्राणिन समुद्धरति नीरुजान् करोति स एव वैद्यपति कविराज, तस्य तस्मै अत्र चतुर्थ्यर्थे षष्ठी चिन्त्या, अश्वदान, घोटकदान, गजदान, फलदान च दातव्य यतो हि स का च पूजा न अर्हति । अपितु सर्वविधपूजायोग्य स, इत्थ महान्तो विवेकशीला भणन्ति कथयन्ति । वसन्ततिलका वृत्तम् । प्रकारान्तरेण चिकित्सकस्य ऋणमुक्तौ शास्त्रनिर्देश'—

चिकित्सितशरीर यो न निष्क्रीणाति दुर्मति' । स यत्करोति सुकृत तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥ मै० र० ॥

हिन्दी—जो सन्निपातरूपी समुद्र में डूबे हुए रोगी का चिकित्सा द्वारा उद्धार कर देता है, अर्थात् नीरोग कर देता है, वही वास्तविक चिकित्सक है । उसको हाथी, घोड़ा तथा उत्तमोत्तम फल देने चाहिये, इतना ही नहीं और भी सब प्रकार उसकी पूजा करनी चाहिये । यही महापुरुषों की आज्ञा है ।

विशेष—इस पद्य की तीसरी पंक्ति व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रतीत होती है इसके स्थान पर इस प्रकार का परिवर्तन कर देने से भाषा शुद्ध होकर भाव ज्यों का त्यों रह जाता है । यथा—"तस्मै गजाश्वफलदानमुशन्ति कां च"। पाठक इस संशोधन पर ध्यान दें ॥ ६१ ॥

तदेव प्रकारान्तरेण वक्ति—

सर्वस्वैः पूजयेद् वैद्यं सन्निपाताद् विवर्जितः।
नो चेत् स नरकं याति शम्भुरित्याह पार्वतीम् ॥ ६२ ॥

व्याख्या—सन्निपाताद् विवर्जित सन्निपातरोगान्मुक्तो रोगी सर्वस्वैः स्वकीयसकलधनधान्यादिभिः वैद्य चिकित्सकं पूजयेद् अर्चयेत्। नो चेद् अन्यथा कृते सति स रोगान्मुक्तो नरकं निरयं याति पापभाग्भवति इति शम्भुः पार्वतीम् आह कथितवान्। "नहि जीवितदानाद्धि दानमन्यद् विशिष्यते" इति शास्त्रानुसारं जीवनप्रदाय सुचिकित्सकाय स्वस्थो रोगी यत्किञ्चिदपि ददाति तत्सर्वं स्वल्पमेव। अनुष्टुप्।

हिन्दी—शिवजी पार्वती से कहते हैं—सन्निपातज्वर से मुक्त रोगी अपने चिकित्सक की सम्मानपूर्वक धनादि उत्तमोत्तम पदार्थों से यथाशक्ति पूजा करे। हे पार्वती! जो रोगमुक्त व्यक्ति ऐसा नहीं करता वह नरकगामी होता है अर्थात् दुखी रहता है ॥ ६२ ॥

कर्णमूलजशोथचिकित्सामाह—

युक्त्वक्शुण्ठीकारवीकट्फलानां तुल्यांशानां चूर्णितानां विमिश्रैः।
वारंवारं कर्णमूलोत्थशोथं रक्तस्रावैराज्यपानैर्जयेद्वा ॥६३॥

व्याख्या—युक्त्वक् चित्रकत्वक् शुण्ठी महौषधं कारवी शतपुष्पा कट्फलं कुम्भिका तुल्यांशानां समभागवतां चूर्णितानाम् एतेषां विमिश्रैः मिश्रितैः लेपैः कर्णमूलोत्थं शोथं जयेद् अपहरेत् किंवा रक्तस्रावैः शृङ्ग्यादियन्त्रैर्जलौकादिभिर्वा रक्तस्रावं कारयेत् अथवा आज्यपानविधिना आज्यं पाययेत्। शालिनीवृत्तम्। भैषज्यरत्नावल्यामपि—

रक्तावसेचनैः पूर्वं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत्। प्रदेहैः कफवातघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥

यद्यपि—

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः। शोफः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥वाग्भट॥

एतदनुसारं सन्निपातान्ते कर्णमूलजः शोथः असाध्यः किन्तु ग्रन्थान्तरे तस्य त्रिधा गतिर्निर्दिष्टा, तद्यथा—

ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोफः।
क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यः कथितो मुनीन्द्रैः ॥

हिन्दी—चीता की छाल, सोंठ, सौंफ, कायफल, सभी द्रव्यों को समभाग लेकर इनका चूर्ण कर लें, पानी के साथ पीसकर इसका लेप लगाने से सन्निपात ज्वर के बाद होने वाला कर्णमूलजशोथ शान्त हो जाता है। अथवा जोंक आदि के द्वारा रक्तस्राव कराना चाहिये या शोथनाशक औषधियों से सिद्ध घृतपान कराना चाहिये ॥ ६३ ॥

कर्णादिरुजाहरो लेप —

अग्निमन्थाग्निरास्नाभिर्मातुलुङ्गस्य मूलकैः।
सदारुनागरैर्लेपः कर्णपार्श्वरुजो हरः ॥ ६४ ॥

व्याख्या—अग्निमन्थ श्रीपर्णी अग्नि चित्रक. रास्ना सुवहा मातुलुङ्ग• वीजपूरक एतेषां मूलकै., दारु देवदारु नागर शुण्ठी एताभ्या सह कृतो लेप •कर्णस्य कर्णयो• वा पार्श्वे समीपे या रुक् शोथात्मिका तस्या हर इति। अनुष्टुप् छन्द । भैषज्यरत्नावल्यामपि योगोऽय लभ्यते—

वीजपूरकमूलानि अग्निमन्थ तथैव च। सनागर देवदारु चव्यचित्रकपेषितम् ॥
प्रलेपनमिद श्रेष्ठ गले श्वयथुनाशनम् ॥ भै० र० ॥

हिन्दी—अरणी, चित्रक, रास्ना, विजौरा नीबू इनकी जड़ें तथा देवदारु और सोंठ इनको कूट-पीसकर लेप करने से सन्निपात ज्वर के अन्त में होनेवाला कर्णमूलज शोथ शान्त हो जाता है ॥ ६४ ॥

गुटपिप्पली-प्रयोग —

अजीर्णजीर्णज्वरपाण्डुकासश्वासाग्निसादाऽरुचिजांस्तु दोषान्।
दूरीकरोत्याशु गुडेन कृष्णा कृष्णेव कृष्णेन विमोहमंहः ॥ ६५ ॥

व्याख्या—अजीर्ण जीर्णज्वर पाण्डुरोग कास श्वासम् अग्निसादम् अग्निमान्द्यम् अरुचिजम्। अरुचे कारणेनोत्पन्ना ये दोषा विकारास्तान् विकारान् गुडेन युक्ता कृष्णा पिप्पलीचूर्णम् आशु शीघ्र तथा दूरीकरोति यथा कृष्णेन वसुदेवसूनुना कृष्णा। द्रौपदी (चीरहरणावसरे) अह दुष्कृत विमोहवैचित्य दूरीकृतवती तद्वत्। यथा द्रौपद्या स्मरणमन्तरा कृष्णेन तस्य शीलरक्षा कृता तद्वद् एव गुटपिप्पलीप्रयोग पूर्वोक्तेभ्यो रोगेभ्य पीडितान् रक्षतीति भाव•। उपजातिवृत्तम्। यथाह चक्रपाणि —

जीर्णज्वरेऽग्निसादे च शस्यते गुटपिप्पली। चक्रदत्ते।

हिन्दी—अनपच, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, अग्नि की मन्दता तथा अरुचि के कारण उत्पन्न दोषों को गुड़ मिश्रित पिप्पली चूर्ण का सेवन उस प्रकार दूर करता है जिस प्रकार चीरहरण के अवसर पर श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के कष्ट को दूर किया ॥ ६५ ॥

जीर्णज्वरे कषाय —

जीर्णज्वरं कफयुतं कणया समेतं
छिन्नोद्भवोद्भवकषायक एष हन्ति।
रामो दशास्यमिव राम इव प्रलम्बं
रामो यथा समरमूर्धनि कार्तवीर्यम् ॥ ६६ ॥

व्याख्या—एष कणया पिप्पल्या समेत सहित यथा स्यात्तथा छिन्नोद्भवोद्भवकषायको गुडूचीनिर्मित क्वाथ कफयुत जीर्णज्वर तथा हन्ति यथा रामो दाशरथि दशास्य रावण, रामो बलराम प्रलम्बम् असुरविशेष, राम परशुराम समरमूर्धनि युद्धभूमौ कार्तवीर्यम् अहनत् । वसन्ततिलका वृत्तम् । यथाह चक्रपाणि.—

पिप्पलीचूर्णसयुक्त' क्वाथश्छिन्नरुहोद्भव. । जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा ॥ चक्रदत्ते ।

हिन्दी—छोटी पीपल और गिलोय का क्वाथ जीर्ण कफज्वर का उसी प्रकार विनाश करता है जिस प्रकार राम ने रावण का, बलराम ने प्रलम्बासुर का और परशुराम ने युद्धभूमि में कार्तवीर्य का विनाश किया ॥ ६६ ॥

पञ्चमूलपिप्पलीप्रयोग —

पञ्चमूलसलिलं चपलाया धूलिभिर्विलुलितं प्रपिबन्तम् ।
पूरुषं कफचिरज्वरपीडा संजहाति विधनं गणिकेव ॥ ६७ ॥

व्याख्या—पञ्चमूल बृहत्पञ्चमूल चपलाया कणाया धूलिभि चूर्णं विलुलित मिश्रित सलिल क्वाथ प्रपिबन्त प्रकर्षेण नियमानुसार पान कुर्वन्त पुरुष रोगिण कफचिरज्वरपीडा जीर्णकफज्वराभिधानो रोग तथा सजहाति सम्यक् प्रकारेण त्यजति यथा विधन विगत धन यस्य त धनरहित पुरुष गणिका वारवधू । स्वागतावृत्तम् ।

हिन्दी—बृहत्पञ्चमूल और छोटी पीपल के क्वाथ को पीने वाले जीर्णकफज्वर से पीडित रोगी को उसका रोग उसी प्रकार छोड़ देता है जिस प्रकार धनहीन पुरुष को वेश्या छोड़ देती है ॥ ६७ ॥

मुस्तादिक्वाथ —

मुस्ताऽमृतानन्तकिरातसिंहीशुण्ठीशटीपर्पटरोहिणीनाम् ।
क्वाथः कणाक्षौद्रयुतः प्रशस्तो जीर्णज्वरे वा विषमज्वरे वा ॥ ६८ ॥

व्याख्या—मुस्ता मुस्तम् अमृता गुडूची अनन्ता दुरालभा, किरात तिक्त सिंही कण्टकारी शुण्ठी महौषधम् , शटी कर्चूर' पर्पट. वरतिक्त (पित्तपापडा इति ख्यात) रोहिणी मासरोहिणी कणा पिप्पली एतेषा मधुयुत क्वाथ जीर्णज्वरे किंवा विषमज्वरे चिकित्सकै प्रशस्त । इन्द्रवज्रावृत्तम् । भैषज्यरत्नावल्यामपि एष योगो लभ्यते—तद्यथा—

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्वाथ । पीत सकणाचूर्ण समधुर्विषम ज्वर हन्ति ।

हिन्दी—नागरमोथा, गिलोय, दुरालभा, चिरायता, कण्टकारी, सोंठ, कचूर, पित्तपापड़ा, मासरोहिणी और पिप्पली इनका क्वाथ मधु के साथ सेवन करने से जीर्णज्वर एव विषमज्वर का विनाश करता है ॥ ६८ ॥

ऐकाहिकज्वरे क्वाथ —

वासापटोलत्रिफलाद्राक्षाशम्याकनिम्बजः ।
समधुःससितः क्वाथो हन्यादैकाहिकं ज्वरं ॥ ६९ ॥

व्याख्या—वासा आटरूप पटोल वरतिक्त त्रिफला फलत्रिकम् द्राक्षा मृद्वीका शम्याक आरग्वध. निम्ब पिचुमर्दः एतेषा मधुना सितया च सह मिलित क्राथ ऐकाहिक ज्वर प्रतिदिनम् एककाले य समायाति त हन्याद विनाशयेत्। पूर्वोक्तादीनाम् ओषधीना काथे सिद्धे सति तत्र मधुसितयो प्रक्षेप कर्तव्य । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—अडूसा, परवल की पत्ती, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुनक्का, अमलतास, नीम की छाल इसका क्राथ मधु और मिश्री मिलाकर पीने से ऐकाहिक ज्वर का विनाश करता है।

विशेष—चरक, सुश्रुत एव वाग्भट में से ऐकाहिक ज्वर का नामत. उल्लेख नहीं है। केवल निदान के ही लिये लिखे हुए माधवनिदान में भी इसका मूल मे तथा इसके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीविजयरक्षित एव श्री कण्ठदत्त के द्वारा लिखित मधुकोष टीका में भी इसका शब्दत वर्णन नहीं किया गया किन्तु चिकित्सा-प्रधान ग्रन्थों भैषज्यरत्नावली आदि में ऐकाहिक ज्वर चिकित्सा नाम से अनेक योग मिलते हैं। हमारे विचार से यह अन्येद्युष्क ज्वर का पृथग् नामकरण मात्र है। यथा—"अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्र एककाल प्रवर्तते।" दिन-रात में केवल एकबार आने वाले ज्वर को "अन्येद्युष्क" कहते हैं और ऐकाहिक शब्द का पारिभाषिक अर्थ भी यही होता है। ऐकाहिक आदि विषमज्वरों में दैवव्यपाश्रय एव युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा द्वारा भी लाभ होता है। इसके विविध प्रयोग चिकित्सा ग्रन्थों में मिलते हैं ॥ ६९ ॥

तृतीयकज्वरे चन्दनादिक्काथ —

सशिशिरः सधनः समहौषधः सनलदः सकणः सपयोधरः।
समधुशर्कर एष कषायको जयति सत्वरमेव तृतीयकम् ॥ ७० ॥

व्याख्या—शिशिर रक्तचन्दन धन धन्याक महौषध शुण्ठी नलदम् उशीर कणा पिप्पली पयोधरो मुस्ता एभिर्द्रव्यै. सहित साधितश्च समधुशर्कर मधुशर्कराभ्या समन्वितो युक्त एष कषायक सत्वरमेव शीघ्रमेव तृतीयक ज्वरविशेष जयति स्ववशमानयति विनाशयतीत्यभिप्राय । तत्र सामान्यचिकित्सासूत्रम् "कर्म साधारण जह्यात्तृतीयकचतुर्थके।" च० चि० ३ ॥ तृतीयेऽह्नि भव तृतीयक त्र्याहिक वा। द्रुतविलम्बितवृत्तम्। यथा चक्रपाणि चक्रदत्ते—

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकै । क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजित ॥

हिन्दी—लालचन्दन, धनियाँ, सोंठ, खस, पिप्पली, नागरमोथा इन द्रव्यों के द्वारा निर्मित क्राथ में मधु एव मिश्री मिलाकर पीने से तृतीयकज्वर का शमन हो जाता है।

विशेष—जहाँ भी क्राथ में शहद मिलाने का निर्देश हो वहाँ क्राथ के शीतल

होने पर ही मिलाना चाहिये। तृतीयकज्वर को साधारण बोलचाल में 'तिजारी बुखार' कहते हैं। यह एक दिन का अन्तर देकर पुन तीसरे दिन आता है अत एव इसको तृतीयक कहते हैं ॥ ७० ॥

चातुर्थिकज्वरे नस्यम्—

चातुर्थिको गच्छति रामठस्य घृतेन जीर्णेन युतस्य नस्यात्।
लीलावतीनां नवयौवनानां मुखावलोकादिव साधुभावः ॥ ७१ ॥

व्याख्या—जीर्णेन घृतेन पुराणसर्पिषा युतस्य रामठस्य हिङ्गो नस्यात् नावनात् चातुर्थिक चतुर्थेऽह्नि भव "चतुर्थेऽह्नि चतुर्थक" माधव। अन्यदपि "दिनद्वय त्वतिक्रम्य य स्यात्स हि चतुर्थक", गच्छति शान्ति प्राप्नोति, यथा—नवयौवनानां नवोढाना युवतीना तथा च लीलावतीनां हावभावादिविलासयुक्तानां स्त्रीणां मुखावलोकान्मुखस्य दर्शनात् साधुभावो धीरता गच्छति तथा ज्वरोऽपि याति, यद्यपि अस्थिगतमज्जागतज्वरयो पृथक्-पृथग् लक्षणानि माधवेनोल्लिखितानि तथापि चातुर्थिकविपर्ययाऽऽख्योऽन्य एव विषमज्वरः। इन्द्रवज्रावृत्तम्।

तद्यथा—

अस्थिमज्जागतो दोषश्चातुर्थिकविपर्यय। जायते भिषजा ज्ञेयो विषमज्वर एव स ॥
भावप्रकाशे ॥

हिन्दी—पुराने घी में हींग मिलाकर नस्य लेने से चौथे दिन आने वाला ज्वर उस प्रकार चला जाता है, जिस प्रकार हाव-भाव, कटाक्षादि में कुशल नवयुवतियों के (मुख) दर्शन से सज्जनता। यह स्नेहन नस्य है ॥ ७१ ॥

देवदार्वादिक्वाथ —

सुरदारुशिवाशिवास्थिरावृषविश्वै. कथितः कषायकः।
मधुना सितया समन्वितः परिपीतः शमयेच्चतुर्थकम् ॥ ७२ ॥

व्याख्या—सुरदारु देवदारु. शिवा हरीतकी शिवा आमलकी स्थिरा शालपर्णी वृष आटरूषक विश्व शुण्ठी षड्भिरेभिर्द्रव्यै कथितोऽभिहित कषायक क्वाथ मधुना सितया च समन्वित मधुसिताभ्यां मिलित परिपीत कृतपान चतुर्थक शमयेत् चतुर्थेऽह्नि भव ज्वर नाशयेत्। यथाह वगसेन —

स्थिरासामलकीदारुशिवावृषमहौषधै।
शृत शीत जल दद्यात् सितामधुसमन्वितम् ॥
चातुर्थिके ज्वरे तीव्रे मन्दे चाप्यथ पावके।

भावमिश्रोऽप्येन समर्थयति—

स्थिरातामलकी दारु शिवा वृषमहौषधै।
सितामधुयुत. क्वाथश्चातुर्थकहर पर ॥

तामलकी = भूधात्री।

तमेव योग चक्रदत्ते चक्रपाणि — वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधित ।
सितामधुयुत क्वाथश्चातुर्थिकनिवारण' ॥

शार्ङ्गधरसहितायामप्येष पाठ सुलभ । ग्रन्थान्तरेष्वपि सुलभोऽयं योग केवल रचना वैशिष्ट्यमेव कवे शेवधि । 'शिवा हरीतकी प्रोक्ता भवेदामलकी शिवा' अनेकार्थ ।

पद्येऽस्मिन् वियोगिनी छन्द ।

हिन्दी—देवदारु, हरीतकी, आवला, शालिपर्णी, अडूसा, सोंठ इनके क्वाथ में मधु और मिश्री मिलाकर पीने से चौथैया ज्वर का शमन हो जाता है ॥ ७२ ॥

शीतज्वरे योगत्रयम्—

भज वेपथुमन् सदा हसन्ती गतधूमां च विलासिनीं हसन्तीम् ।
कठिनस्तनमञ्जुलोज्ज्वलांगां मधु च त्र्यूषणकेन कट्फलं वा ॥ ७३ ॥

व्याख्या—हे वेपथुमन् ! शीतज्वरपीडित, सदा सर्वदा गतधूमा धूमेन रहिता हसन्तीम् अङ्गारधानिकाम् "अङ्गारधानिकाऽङ्गारशकट्यपि हसन्त्यपि", अमर ॥ (सग्गड, बोरसी) भज सेवस्व । अथवा कठिनस्तनमञ्जुलोज्ज्वलाङ्गां कठिनौ स्तनौ यत्र तत् कठिनस्तन मञ्जुल सुन्दरञ्च तद् उज्ज्वलाङ्ग मञ्जुलोज्ज्वलाङ्गम् यस्या एवम्भूता या सा ता हसन्तीम् प्रसन्नमुखारविन्दवती विलासिनीं नवोढा नायिका भज आलिङ्गय । किंवा विश्वोपकुल्या-मरिचाना समाहार त्र्यूषण कट्फल कुम्भिका एतेषा मधुयुत चूर्ण भज भक्षय । अत्र मधुशब्देन मद्यसेवनस्यापि सङ्केत शीतवारकत्वात् तदित्थम्—

मधु मद्ये मधु क्षौद्रे मधु पुष्परसे विदु ।
मधुश्चैत्रे मधुर्दैत्ये मधुकेऽपि मधु स्मृत ॥ इत्यनेकार्थ ।

मद्यगुणा — मद्य सर्वं भवेदुष्ण पित्तकृद् वातनाशनम् ।
भेदन शीघ्रपाक च रूक्ष कफहर परम् ॥ अभिनवनि० ।

त्र्यूषणस्य गुणा — त्र्यूषण दीपन हन्ति कासश्वासत्वगामयान् ॥ तदेव ।

विलासिनीसेवने गुणानाह— कूपोदक वटच्छाया नारीणां सुपयोधरौ ।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले तु शीतलम् ॥

यथाह भावमिश्र — त स्तनाभ्यां सुपीनाभ्या पीवरोरुर्नितम्बिनी ।
युवती गाढमालिङ्गेत्तेन शीतम्प्रशाम्यति ॥ भा प्र म ख ।

अग्निसेवने गुणा — अग्निर्वातकफस्तम्भशीतवेपथुनाशन ।
आमाभिष्यन्दशमनो रक्तपित्तप्रकोपण ॥ भावप्रकाशे ।

ज्वरचिकित्साप्रकरणे— त्रयोदशविध स्वेद स्वेदाध्याये निदर्शित ।
मात्राकालविदा युक्त स च शीतज्वरापह ॥ च चि अ ३ ।

हिन्दी—हे शीतज्वर से पीड़ित रोगी ! धूमरहित जलते हुए कोयलोंवाली बोरसी, अगीठी या अंगारधानिका का सेवन कर । अथवा सुरूपा विशाल स्तनों

वाली एव प्रसन्नचित्त युवती का आलिंगन कर। नहीं तो सोंठ, मरिच, पीपल, कट्फल के चूर्णों का मधु के साथ सेवन कर (या केवल उत्तम कोटि के मद्य (शराब) का उचित मात्रा में सेवन कर)। ये तीनों योग शीतज्वर नाशक हैं ॥

चतुर्थकज्वरे नस्यम्—

अगस्त्यपत्रस्वरसैर्नस्याद्याति चतुर्थकः।
संसारसागर इव पुरारिपुरसेवनात् ॥ ७४ ॥

व्याख्या—अगस्त्यपत्र मुनिद्रुमदल तस्य स्वरसै नस्यात् नावनात् चतुर्थक ज्वर. तथा याति यथा पुरारिपुर काशी तस्य सेवनात् ससारसागर भवबन्धनम् याति विनश्यति। यथाह चक्रपाणि चक्रदत्ते "नस्य चातुर्थक हन्ति रसो वाऽगस्त्यसम्भव"। रेचनस्नेहन-भेदाभ्या नस्यस्य द्वैविध्यम्—

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचन स्नेहन तथा। रेचन कर्षण प्रोक्तस्नेहन बृंहण मतम् ॥ शा स।

एतन्नस्य रेचनार्थ प्रयुज्यते। कटुतैलादिकस्य प्रतिदिन प्रयुज्यमान नस्य बृंहण भवति। अनुष्टुप्छन्द।

हिन्दी—अगस्त्य पत्रों के स्वरस का नस्य लेने से रोगी चौथैया ज्वर से उस प्रकार मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार काशीवास करने से मानव भवसागर के बन्धनों से (मुक्त हो जाता है)। यह रेचन नस्य है ॥ ७४ ॥

शीतज्वरे शक्राह्वादिकषाय —

शक्राह्वदद्रुघ्नविषामृतानां निर्गुण्डिकाभृङ्गमहौषधानाम्।
क्षुद्रायवानीसहितः कषायः शीतज्वरारण्यहिरण्यरेताः ॥ ७५ ॥

व्याख्या—शक्राह्व इन्द्रयव दद्रुघ्न चक्रमर्द वृष वासक अमृता गुडूची निर्गुण्डिका सिन्दुवार भृङ्ग गजा केशराज वा महौषध शुण्ठी क्षुद्रा लघुकण्टकारी यवानी अजमोदा नवभिरेभिर्द्रव्यै साधित कषाय शीतज्वरारण्यहिरण्यरेता शीतज्वर एव- वन तस्य विनाशाय अग्निरिव समर्थ। इन्द्रवज्रावृत्तम्।

हिन्दी—इन्द्रजौ, चकवड़ के बीज, अडूसा, गिलोय, सम्हालू, भाग, सोंठ, छोटी कटेरी, अजवायन इन नौ द्रव्यों मे निर्मित क्वाथ शीतज्वररूपी वन का विनाश करने के लिये अग्नि के समान समर्थ है। अर्थात् यह क्वाथ शीतज्वर-नाशक है ॥ ७५ ॥

विषमज्वर नागरादि कषाय —

सनागराया. सपयोधराया. ससिंहिकाया. सगुडूचिकायाः।
धात्र्याः कषायो मधुना समेतः कणासमेतो विषमज्वरे स्यात् ॥ ७६ ॥

व्याख्या—नागर शुण्ठी पयोधर मुस्ता सिंहिका बृहती गुडूची अमृता धात्री

आमलकी पञ्चैतासामोषधीनां क्वाथः मधुना क्षौद्रेण कणया पिप्पल्या च समेतो विमिश्रः विषमज्वरे स्यात् विषमज्वरनाशकः प्रदिष्टः । यथाह भावमिश्रः —

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्वाथः ।
पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति ॥ भा. प्र. म. ख. ॥

भैषज्यरत्नावल्यामपि योगोऽयं तथैवोद्धृतो दृश्यते । उपजातिवृत्तम् ॥

हिन्दी—सोंठ, मोथा, बड़ी कटेरी, गिलोय, आंवला इन पांच द्रव्यों का क्वाथ छोटी पीपल का चूर्ण तथा मधु मिलाकर सेवन करने से विषम ज्वर का नाश होता है ॥ ७६ ॥

रसोनकल्कप्रयोग —

सुरालये वा भुजगालये वा नरालये वा न रसोनकल्कात् ।
तैलेन युक्तादपरः प्रयोगो महासमीरे विषमज्वरेऽपि ॥ ७७ ॥

व्याख्या—सुरालये स्वर्गलोके भुजगालये पाताले नरालये भूलोके अर्थात् लोकत्रयेऽपि वा तैलेन तिलतैलेन युक्ताद् रसोनकल्काद् एकेन रसेन ऊनः रसोनः लशुनः तस्य कल्काद् अपरः द्वितीयः प्रयोगः उपचारः औषधं वा महासमीरे तीव्रवातज्वरे विषमज्वरे वा नास्तीति शेषः । "सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ", एते पञ्चविषमज्वराः । रसोनस्योत्पत्तिः वाग्भटे—

राहोरमृतचौर्येण लूनाद् ये पतिता गलाद् ।
अमृतस्य कणाभूमौ ते रसोनत्वमागताः ॥

यथाह भावमिश्रः —

यदामृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात् ।
तदा ततोऽपतद् बिन्दुः स रसोनोऽभवद् भुवि ॥
पञ्चभिस्तु रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः ।
तस्माद् रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥
एतामेव कथां समर्थयति हारीतः स्वसंहितायाम् ।

कल्कनिर्माणविधि —

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसम्मितम् ॥
कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ।
सितागुडौ समौ देयौ द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ शार्ङ्गधरे ।

भैषज्यरत्नावल्याम्—

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्तः ।
विमुच्यते सोऽप्यचिराज्ज्वरेण वातामयैश्चापि सुघोररूपैः ॥

एष एव योगोऽविकलरूपेण चक्रदत्तेऽपि दृश्यते । उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—स्वर्ग, पाताल तथा भूतल अर्थात् तीनों लोकों में तीव्र ज्वर एवं विषम ज्वर को शान्त करने के लिये तिल तैल मिश्रित लहसुन की चटनी के निरन्तर सेवन के अतिरिक्त दूसरा कोई सफल प्रयोग है ही नहीं।

विशेष—सूखे अमचूर को पानी के साथ पीसकर कच्चे आम इमली को यों ही पीसकर आवश्यक प्रक्षेपों को डालकर जैसे चटनी बनाई जाती है वैसे ही औषधोक्त द्रव्यों द्वारा कल्क=चटनी का निर्माण किया जाता है। तीनों लोक में ऐसा प्रभावकारी दूसरा प्रयोग नहीं है यह कहना ग्रन्थकर्त्ता की स्वानुभूति के प्रति गर्वोक्ति है ॥ ७७ ॥

विषमज्वरे योगचतुष्टयम्—

क्षौद्रेण पथ्या विषमज्वरापहाऽजाजी गुडाढ्या विषमज्वरापहा ।
कृष्णैधमाना विषमज्वरापहा श्रेष्ठा गुडाढ्या विषमज्वरापहा ॥ ७८ ॥

व्याख्या—क्षौद्रेण मधुना सेविता पथ्या हरीतकी विषमज्वरापहा विषमज्वर ज्वरान् वा अपहन्ति। अजाजी कृष्णजीरक गुडेन सहिता तदेव कार्यं करोति। कृष्णैधमाना वर्धमानपिप्पली विषमज्वरं नाशयति। गुडाढ्या गुडप्रधाना श्रेष्ठा विशेषगुणप्रदायिनी पिप्पली विषमज्वरापहा भवति। चरके वर्धमानपिप्पलीप्रयोग —

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपैप्पलिकं दिनम्। वर्धयेद् पयसा सार्धं तथा चापनयेत् पुनः ॥
जीर्णे जीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा। पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनम् ॥
पिष्टास्ता बलिभिः सेव्या शृता मध्यबलैर्नरैः। शीतीकृता ह्रस्वबलैर्योज्या दोषामयान् प्रति ॥
दशपैप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट् प्रकीर्तितः। प्रयोगो यस्त्रिपर्यन्तः स कनीयान् स चानले ॥
च० चि० अ० १ ॥

त्रिवृद्धया पञ्चवृद्धया वा सप्तवृद्धयाऽथवा पुनः ॥ इत्यामनन्ति।

अन्ये तु—

उपरि लिखिता एकश्लोकसमापनाश्चत्वारो योगा विषमज्वरान् शमयन्ति। इन्द्रवंशावृत्तम्।

हिन्दी—मधु के साथ हरीतकी का सेवन, गुड़ के साथ कालाजीरा का सेवन, वर्धमान पिप्पली का प्रयोग अथवा गुड़ के साथ पिप्पली का सेवन विषम ज्वरों का विनाश करता है। इस एक ही श्लोक में पृथक्-पृथक् चार योगों का वर्णन है ॥ ७८ ॥

विषमज्वरे पटोलादिक्वाथ —

प्रवालतुलिताधरे कुचकुलाचलालङ्कृते
विशालजघनस्थले चटुलचारुचेलाञ्चले ।
पटोलकटुरोहिणी-मधुकचेतकीमुस्तकैः
कषायक उदाहृतो विषमशान्तये सूरिभिः ॥ ७९ ॥

व्याख्या—प्रवालतुलिताधरे प्रवाल नवदल तेन तुलितम् अधरपल्लव यस्या सा

तत्सम्बुद्धौ, कुचकुलाचलाऽलङ्कृते कुचौ एव कुलाचलौ महोन्नतपर्वतौ ताभ्यामलङ्कृते सुशोभिते, अत्र कुचयो पीनोन्नतत्वात् कुलाचलप्रयोगो विहित तथथा—

महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमान् ऋक्षपर्वत । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वता ॥

विशालजघनस्थले विशाले विपुले जघने स्त्रीकट्या पुरोभागौ यस्या सा तत्सम्बुद्धौ चटुलचारुचेलाञ्चले चटुल चञ्चल च तत् चारु सुन्दर च तत् चेलाञ्चल शाटिकाप्रान्तभागो यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, इत्थभूते हे प्रियतमे ! पटोल कुलक कटुरोहिणी कट्वी मधुको गुडपुष्प, चेतकी हरीतकीभेद मुस्तक मुस्ता पञ्चभिरेभिर्द्रव्यै कृत कषाय कुशलैश्चिकित्सकैर्विषमज्वरशान्तये निर्दिष्ट, इति ग्रन्थकर्तुराशय । पृथ्वीवृत्तम् ।

हरीतकीभेदा —

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया । जीवन्ती चेतकी चेति विज्ञेया सप्तजातय ॥

चेत।या उत्पत्तिस्थान हिमालय आकृति त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया । भा० प्र० ।

हिन्दी—नवकिसलय के सदृश होंठों से युक्त, पीन एवं उन्नत स्तनों से सुशोभित विशाल जाघों और सुन्दर आंचलवाली प्रियतमे ! परवल, कुटकी, महुआ, चेतकी नामक हरड, नागरमोथा इन पाच द्रव्यों से वना हुआ क्वाथ विषमज्वर का विनाश करता है। यह विद्वान् चिकित्सकों का मत है ॥ ७९ ॥

विषमज्वरनाशनो योग —

यो भजेत् समधुश्यामां श्यामामिव मनोहराम् ।
विषमेषुव्यथास्तस्य न भवन्ति कदाचन ॥ ८० ॥

व्याख्या—य विषमज्वरी श्यामा षोडशवार्षिकी स्त्री तद्वद् मनोहरा रोगनाशकत्वात् प्रिया श्यामा पिप्पलीं मधुना सह भजेत सेवेत तस्य विषमेषु विषमज्वरेषु व्यथा पीडा कदाचन कदापि न भवन्ति । अथवा य मधुना माक्षिकेण सह श्यामा त्रिवृता भजेत् सोऽपि विषमज्वरेभ्यो मुक्तो भवति । इति द्वितीयोऽर्थ । अथ श्लेषानुप्राणितस्तृतीयोऽर्थ य कामपीडित समधुश्यामा मधुना मद्येन सह श्यामा षोडशवार्षिकी कामिनीं भजेत् तस्य विषमेषु-काम तस्य व्यथा पीडा न भवन्तीति । श्यामाया लक्षणानि—

स्निग्धनखनयनदशना निरनुशया मानिनी स्थिरस्नेहा ।
सुस्पर्शा शिशिरमासलवरागना सा मता श्यामा ॥

अत्र पद्ये विषमज्वरचिकित्सया सहैव कामज्वरस्यापि चिकित्सा ग्रन्थकर्त्रा श्लेषमुखेन निर्दिष्टा । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—नवोढा नायिका के समान सुखद मधु युक्त निशोथ का अथवा मधु युक्त पिप्पली का सेवन करने से विषम ज्वरों का शमन होता है। अथवा कामज्वर पीड़ित रोगी यदि नवोढा नायिका का सेवन (आलिङ्गन) करता है तो उसका ज्वर शान्त हो जाता ॥ ८० ॥

तण्डुलीयमूलधारणप्रयोग —

क्षणमपि चलतां जहीहि मुग्धे शृणु वचनं मम तन्वि सावधाना।
वसति शिरसि मेघनादमूले व्रजतितरां विषमो विशालदृष्टे!॥ ८१॥

व्याख्या—हे मुग्धे! उद्यद्यौवने अर्थात् चञ्चले क्षणमपि स्तोकमपि चञ्चलता चाञ्चल्य जहीहि मन्त्यज, हे तन्वि! कृशोदरि सावधाना दत्तचित्ता सती मम मदीयमेतदुच्यमान वचन वाक्य शृणु आकर्णय मेघनादमूले तण्डुलीयकमूले शिरसि शिखाया वसति वद्धे सति हे विशालदृष्टे! विशाला विस्तृता दृष्टि यस्या सा तत्सम्बुद्धौ विषमो विषमज्वरो व्रजतितरान् अतिशयेन गच्छतीति भाव। रलङ्कलाया विशालदृष्टिता सौन्दर्यापादकत्वे सति शास्त्रज्ञत्वमपि व्यनक्ति। तत्र विशाला व्यापका शास्त्रान्तरसञ्चारिणीत्यभिप्राय। पुष्पिताग्रावृत्तम्।

हिन्दी—हे मुग्ध स्वभाव वाली प्रिये! थोड़ी देर चञ्चलता छोड़ो, हे कृशोदरि! सावधान होकर मेरी बात सुनो, हे हरिणाक्षि! चौलाई की जड़ को शिर में बाधने से विषम ज्वर का नाश हो जाता है॥ ८१॥

विषमज्वरे कषाय —

विषममपहरत्यसौ कषायो मधु मधुको मधुरामृताशिवानाम्।
अहमिव तव कामिनि प्रकोपं चरणसरोरुहयोर्लुठन् हठेन॥८२॥

व्याख्या—हे कामिनि प्रियतमे! यथा अह हठेन बलात्कारेण तव चरणसरोरुहयोर्लुठन् तव चरणकमलयो पतन् मन् प्रकोप हरामि, अनेन पादपतनेन गुरुमानिन्या अपि क्रोधोपशम इति प्रसिद्धि कामशास्त्रेषु। तद्वद् असौ मधुक मधुयष्टी मधुरा शर्करा अमृता गुडूची शिवा आमलकी एतेषा मधुमधुरो मधुना मधुरीकृत कषाय विषम विषमाऽऽख्य ज्वरन अपहरति विनाशयतीत्यर्थ। पुष्पिताग्रावृत्तम्।

हिन्दी—हे प्रिये! मेरी बात सुनो! मुलेठी, चीनी, गिलोय, आंवला इन चारों का क्वाथ मधु मिलाकर पीने से उस प्रकार विषम ज्वर को शान्त करता है जिस प्रकार तुम्हारे अत्यन्त क्रुद्ध हो जाने पर मैं चरणों में गिरकर हठपूर्वक तुम्हारे क्रोध को शान्त कर लेता हूँ॥ ८२॥

विषमज्वरनाशनोऽपर कषाय —

हे मुग्धे सलिलधरामृताशिवानां सप्ताहं पिब मधुसंयुतं कषायम्।
भो कान्ते तव विषमज्वरापनोदादत्यन्तं तनुलतिका प्रहर्षिणी स्यात्॥

व्याख्या—हे मुग्धे! प्रियतमे सलिलधर तोयभृत् मुस्ता, अमृता गुडूची शिवा आमलकी एषा त्रयाणा मधुसयुत मधुना मिलित मधुरीकृत कषाय सप्ताह सप्तदिन यावत् पिब। भो कान्ते! रूपसौन्दर्यशालिनि! विषमज्वरापनोदात् विषमज्वरदूरीकरणाद् अनेन कषायेण अत्यन्तम् अत्यधिक तव तनुलतिका अङ्गयष्टि प्रहर्षिणी प्रमोदातिशययुक्ता

स्यात् । यथाह वाग्भट अष्टाङ्गहृदये—"धात्री मुस्ताऽमृताक्षौद्रमर्धश्लोकसमापना ।" अ० चि० अ० १ । प्रहर्षिणी वृत्तम् ।

हिन्दी—हे मुग्धे ! नागरमोथा, गिलोय, आंवला इन तीनों का मधु मिश्रित क्वाथ एक सप्ताह तक पीना चाहिये । हे प्रिये ! इस क्वाथ के सेवन से विषम ज्वर दूर होकर तुम्हारा शरीर प्रसन्न रहे ॥ ८३ ॥

ज्वरहरम् अष्टाङ्गधूपनम्—

अयि कुशाननतीक्ष्णमते मते मतिमतामतिमन्मथमन्थरे ।
ज्वरहरं रुगरिष्टशिवावचायवहविर्जतुसर्षपधूपनम् ॥ ८४ ॥

व्याख्या—अयीतिस्नेहपूर्वकं सम्बोधनम् , कुशाननतीक्ष्णमते कुशस्य दर्भस्य आननं मुखमिव तीक्ष्णा जानव्युत्पन्ना मतिर्यस्याः सा तत्सम्बोधने, मतिमतां बुद्धिमतां मते पूजिते, अतिमन्मथमन्थरे प्रवृद्धकामवशान्मन्दगतियुक्ते एतदधोलिखितमष्टाङ्गधूपनम् ज्वरं नाशयतीत्यर्थः । रुक् कुष्ठम् अरिष्टं निम्बं शिवा आमलकी वचा गोलोमी यव सक्तु इन्द्रयवो वा हविः घृत जतु लाक्षा सर्षप गौरसर्षप इत्यष्टौ धूपनानि; यथाह चक्रपाणि —
पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी । सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ चक्रदत्ते ॥ द्रुतविलम्बितवृत्तम् ।

हिन्दी—हे कुशाग्र बुद्धि वाली विद्वानों के द्वारा सम्मानित, यौवन के उन्माद से मन्दगति वाली प्रिये ! कूठ, नीम के पत्ते, आंवला, वच, जौ, अथवा इन्द्रजौ, घी, लाख और पीली सरसों इनका धूप देने से ज्वर शान्त हो जाता है ॥ ८४ ॥

सततकज्वरं तिक्तादिकषाय —

तिक्तोशीरबलाधान्यपर्पटाम्भोधरैः कृतः ।
क्वाथः पुनः समायातं ज्वरं शीघ्रं निवारयेत् ॥ ८५ ॥

व्याख्या—तिक्ता कुटकी उशीरं नलदं बला वाट्यालकः धान्यं धन्याकं पर्पटं वरतिक्तं अम्भोधरं मुस्ता षड्भिर्द्रव्यैः कृतः कषायः पुनः समायातम् एकस्मिन्नेव दिने वारद्वयम्, आगच्छन्तं सततारूयं ज्वरं शीघ्रं निवारयेत् । अनुष्टुप्छन्दः ।

हिन्दी—कुटकी, खस, बला, धनिया, पितपापड़ा, नागरमोथा इन छः द्रव्यों के द्वारा निर्मित कषाय एक ही दिन में दो बार आने वाले सततक ज्वर का नाश करता है । यह सततक नामक विषम ज्वरनाशक उत्तम योग है ॥ ८५ ॥

लाक्षादि तैलम्—

रास्नामूर्वामधुकरजनीकुष्ठशीताश्वगन्धा-
कौन्तीतिक्तामिशिसुरघनैस्तुल्यभागैः समस्तम् ।
तैलं लाक्षारसपरिमितं गर्भिणीनां प्रशस्तं
भूतोन्मादज्वरपवनजिद् यक्षरक्षःक्षयघ्नम् ॥ ८६ ॥

व्याख्या—रास्ना सुवहा मूर्वा मधुरमा मधुक मधुयष्टी रजनी हरिद्रा कुष्ठ रुक् शीत श्वेतचन्दन अश्वगन्धा हयगन्धा कौन्ती रेणुका तिक्ता कुटकी मिशि. शतपुष्पा सुर देवदारु घन मुस्ता लाक्षारसपरिमित तैल च तुल्यभागै समस्तम् एभि समानभागिकैर्द्रव्यै साधित तैल गर्भिणीनाम् अन्तर्वत्नीनाम् "अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्", इत्यनेन नुगागमे। प्रशस्त लाभदायकम् , अन्यच्च भूतोन्मादज्वरपवनजिद् भूतोत्थज्वरवातव्याधिविनाशक यक्षबाधा रक्षसा बाधा क्षय राजयक्ष्माण च विनाशयति। मन्दाक्रान्तावृत्तम्। अथ तैलसाधनप्रकार —

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृत वा तैलमेव वा।
चतुर्गुणे द्रवे साध्य तस्य मात्रा पलोन्मिता॥

क्वाथे जलपरिमाणमाह—
चतुर्गुण मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुण जलम्।
तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुण पय॥
अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीर षोडशिक मतम्।

तत्र पाकस्य त्रैविध्यम्—
स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्य खरस्तथा।

तस्य प्रयोग —
नस्यार्थं स्यान्मृदु पाको मध्यम सर्वकर्मसु॥
अभ्यङ्गार्थं खर प्रोक्तो युञ्ज्यादेव यथोचितम्॥ शा० स०।

लाक्षादितैलस्य निर्माणविधि —
लाक्षाढक क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकै.। चतुर्थांश श्रृत नीत्वा तैलप्रस्थे विनिक्षिपेत्॥
मस्त्वाढक च गोदध्नस्तत्रैव विनियोजयेत्। शतपुष्पामश्वगन्धा हरिद्रा देवदारु च॥
कटुकीं रेणुका मूर्वा कुष्ठ च मधुयष्टिकाम्। चन्दन मुस्तक रास्ना पृथक्कर्षप्रमाणत.॥
चूर्णयेत्तत्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना। अस्याभ्यङ्गात्प्रशाम्यन्ति सर्वेऽपि विषमज्वरा॥
कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा। वातपित्तमपस्मारमुन्माद यक्षराक्षसान्॥
कण्डू शूलञ्च दौर्गन्ध्य गात्राणा स्फुरण जयेत्। पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यङ्गतो भृशम्॥
शार्ङ्गधरे॥

हिन्दी—रासना, मरोड़फली, मुलेठी, हल्दी, कूठ, सफेद चन्दन, असगन्ध, रेणुका, कुटकी, सौंफ, देवदारु, नागरमोथा ये सभी द्रव्य समानभाग (१-१ तोला १-१ कर्ष) और लाक्षारस के समान तैल (दोनों १-१ आढक=३ सेर ३ पाव ४ तोला) लेकर इसका निर्माण करे। यह लाक्षादि तैल गर्भिणियों के लिये अत्यन्त लाभदायक है तथा भूतोन्माद, ज्वर, वातविकारों को जीतता है और यक्षबाधा, राक्षसपीड़ा एव क्षयरोग का विनाशक है।

विशेष—लाक्षादि तैल निर्माण के लिये लाख का क्वाथ बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि लाख नीचे बैठकर जल न जाय अत. उसको चलाते रहें। लाख का पाक अन्य काष्ठौषधियों की भांति नहीं होता यह केवल पिघल

जाती है। इस से निर्मित तैल हल्का लाल रंग का होता है। इसके जितने गुण लिखे जाँय थोडे हैं। तैल साधन में तिल तैल ही लेना चाहिये ॥ ८६ ॥

पट्कट्वरतैलम्—

रुङ्मूर्वाजतुचिकसासुवर्चिकानिड्विश्वाभिः सलिलसदृग्दधिप्रसिद्धे।
तक्रे षड्गुणगणिते विपक्वमार्ये तैलं स्यात्सपदि निदाघशीतहारि ॥८७॥

व्याख्या—हे प्रसिद्धे आर्ये ! रुक् कुष्ठ मूर्वा मधुरमा जतु लाक्षा सुवर्चिका लवण निट् निशा, निड् अत्र 'व्रश्चभ्रस्जेत्यादिसूत्रेण शस्य षत्वे जश्त्वचर्त्वे निट् इति साधु। विश्वा शुण्ठी सलिलसदृग्दधि सलिलेन जलेन समान तुल्य यद् दधि तेन पक्व तथा षड्गुणगणिते तक्रे तैलात् तिलतैलात् 'षड्गुणाधिके तक्रे विपक्व साधितम् एतत्तैलवर सपदि सेवित सत् निदाघशीतहारि उष्णता शीतता च हरति। प्रहर्षिणीवृत्तम्।

यथाह चक्रपाणि चक्रदत्ते—

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभि।
तैल ज्वरे षट्गुणकट्वसिद्धमभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥

कट्वरपरिचय — दध्न ससारकस्यात्र तक्र कट्वरमिष्यते।
घृततैलपाकनिर्णय — फेनोद्गमो यदा तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि ॥
तैलमूर्च्छनविधि — कृत्वा तैल कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तत्
पक्व निष्फेनभाव गतमिह हि यदा शैत्यभाव समेत्य।
मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकै सामलै साक्षपथ्यै
सूचीपत्राङ्घ्रिनीरैरुपहितमथितैस्तैलगन्ध जहाति ॥
तैलस्येन्दुकलाशिकेन विकसा ग्राह्या तु मूर्च्छाविधौ
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीवेरलोध्रान्विता।
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादाशिका
दुर्गन्ध विनिहत्य तैलमरुण सौरभ्यमाकुर्वते ॥
पाच्यास्तैलजगन्धदोषहृतये कल्कीकृतास्तद्विदा ॥ भै० र० ॥

हिन्दी—हे अपने सद्गुणों से प्रसिद्ध एव कुलीन रत्नकला ! कूठ, मरोड़फली, लाख, सोंचरनमक, हल्दी, सोंठ ये द्रव्य और जितना दही हो उतना ही पानी मिलाकर इसका मठा बना लें (यह मठा तैल से छः गुना अधिक होना चाहिये) इसके साथ पकाया हुआ यह पट्कट्वर तैल शीत तथा दाह दोनों का नाश अथवा उपशमन करता है।

विशेष—किसी भी तैल का निर्माण करने के पूर्व तैल को मूर्च्छित कर लेना चाहिये। इसकी विधि ऊपर व्याख्या में दी गई है। कट्वर-मक्खन सहित दही के घोल को कटवर कहते हैं ॥ ८७ ॥

विषमज्वरादिषु घृतप्रयोग —

गोपीद्वयामलकी स्थिरामगधजातिक्ताहिमश्रीफल-
द्राक्षाफालिनिसेव्यधावनिविषामुस्तैन्द्रजैः साधितम् ।
स्यादाज्यं विषमज्वरं क्षयशिरःपार्श्वव्यथाऽरोचकं
दीप्तं शोफहलीमकप्रशमयेल्लीलालतामञ्जरि ॥ ८८ ॥

व्याख्या—हे लीलालतामञ्जरि ! लीला एव हावभावादिकमेव लता वल्ली तस्या मञ्जरी वल्लरी तत्सम्बुद्धौ, गोपीप्रभृतिभिरौषधद्रव्यैः साधितम् आज्यं घृतं विषमज्वरं सन्ततादिसमूहं क्षयं शोपं शिरःशूलं पार्श्वशूलम् अरोचकं दीप्तं प्रवृद्धं शोफं शोथं हलीमकं पाण्डुरोगभेदम् इमान् रोगान् प्रशमयेत् विनाशयेत् । तत्रौषधद्रव्याण्याह गोपीद्वयं सारिवायुग्मकं (कृष्णा श्वेता च) आमलकी धात्री स्थिरा शालपर्णी मगधजा पिप्पली तिक्ता कुटकी हिमं रक्तचन्दनं श्रीफलं बिल्वं द्राक्षा मृद्वीका फालिनिका प्रियगुः सेव्यम् उशीरं धावनी पृश्निपर्णी विषा अतिविषा मुस्ता मुस्तकं इन्द्रजं इन्द्रयवं योगेपूक्तानां व्याधीनां निदानानि तत्तद्ग्रन्थेषु द्रष्टव्यानि । शार्दूलविक्रीडितम् । वाग्भटेऽपि योगोऽयं विलसति तद्यथा—

पिप्पलीन्द्रयवधावनितिक्तासारिवामलकतामलकीभिः ।
बिल्वमुस्तहिमफालिनिसेव्यैर्द्राक्षयातिविषया स्थिरया च ॥
घृतमाशु निहन्ति साधितं ज्वरमग्निं विषमं हलीमकम् ।
अरुचिं भृशतापमसयोर्वमथुं पार्श्वशिरोरुजं क्षयम् ॥

तत्र घृतसाधनात्पूर्वं घृतमूर्च्छनप्रकारमाह—

पथ्याधात्रीबिभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च
द्रव्यैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ।
आज्यप्रस्थं विफेन परिपचनगतं मूर्च्छयेद् वैद्यवर्य-
स्तस्मादामोपदेशं हरति च सकलं वीर्यवत्सौख्यदायि ॥ भै० र० ॥

ज्वरे दाहानन्तरमेव घृतप्रयोगः यथाह चरकः —

अत ऊर्ध्वं कफे मन्दे वातपित्तोत्तरे ज्वरे । परिपक्वेषु दोषेषु सर्पिष्पानं यथाऽमृतम् ॥

च० चि० ३ ॥

हिन्दी—हावभावादि कलाकुशल रत्नकले ! काली सारिवा, सफेद सारिवा, आंवला, शालपर्णी, पिप्पली, कुटकी, लालचन्दन, बेल, मुनक्का, प्रियगु, खस, पिठवन, अतीस, नागरमोथा, इन्द्रजौ इन औषधियों (का कल्क बनाकर कल्क से चौगुना घी, घी से चौगुना जल) से निर्मित घी का सेवन विषमज्वर, राजयक्ष्मा, शिरःशूल (अर्धावभेदक आदि), पसलियों की पीड़ा, अरुचि, सूजन, हलीमक (पांडुरोग का एक भेद) इन रोगों का शमन करता है ।

विशेष—"गोपी द्वयामलकी" इस समस्त पद का गोपीद्वय अर्थ, जैसा कि इस टीका में किया गया है, होता है। यदि इसका अर्थ "आमलकीद्वय" किया जाय तो ग्रन्थान्तरों में इसके भी उदाहरण सुलभ हैं। तब इसका अर्थ आंवला—भुंइ-आवला होगा। इन दोनों अर्थों से योग के लाभालाभ पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। द्रव्यों के गुणधर्मों पर ध्यान दें।

चक्रपाणि द्वारा रचित चक्रदत्त में जहाँ यह विषय आया है वहाँ अरोचक शब्द का ग्रहण नहीं किया गया है। आचार्य वाग्भट ने तो शब्दत उल्लेख किया है और हमें "वाग्भटस्य मतमस्ति समस्तम्" लोलिम्बराजकृत "वैद्यावतंस" श्लोक सं० ५५ पर ही विशेष ध्यान देना है॥ ८८॥

ज्वरे असाध्यलक्षणानि—

ऊष्मार्दितो यश्च दिनावसाने शीतार्दितो यश्च निशावसाने।
हिक्कार्दितो यः कसनार्दितो यः स याति मृत्योरवलोकनाय॥ ८९॥

व्याख्या—य ज्वररोगी दिनावसाने सायकाले ऊष्मार्दितो घर्मेण पीडित स्यात् यश्च निशावसाने प्रात काले शीतार्दित· शीतेन पीडित स्यात् किंवा हिक्कार्दित· हिक्काभिरुपप्लुत स्यात् अथवा कसनार्दित कासेनोपद्रुत स्यात् स मृत्योरवलोकनाय मरणाय याति गच्छतीत्यर्थ। इन्द्रवज्रावृत्तम्। असाध्यज्वरलक्षणप्रसगे सुश्रुत —

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया।
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च॥ सु० उ० ३९॥

अन्यच्च ज्वरेपूपद्रवा — कासो मूर्च्छारुचिश्छर्दिस्तृष्णार्तीसारविड्ग्रहा।
हिक्काश्वासागमर्दाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश॥

हिन्दी—जो ज्वर रोगी सायकाल दाह से पीड़ित रहता हो और प्रात काल के समय शीत से पीड़ित हो तथा जिसको हिचकियाँ आ रही हों या जिसको खांसी का प्रबल वेग हो वह मृत्यु के दर्शनार्थ चला जाता है, अर्थात् मर जाता है॥८९॥

ज्वरे दैवव्यपाश्रयचिकित्सा—

वेदानां श्रवणं हि तस्य चरणं द्रव्यस्य संवर्पणं
कृष्णस्य स्मरणं शुभस्य करणं विप्रस्य सन्तर्पणम्।
अश्वत्थभ्रमणं सुरत्नधरणं दीनस्य संरक्षणं
हन्यादष्टविधं ज्वरं कुमुदिनीनाथो यथोग्रं तमः॥ ९०॥

व्याख्या—वेदाना श्रवणम् ऋग्यजु सामाथर्वणा किं वा पुराणादीनाम् आकर्णनं, हितस्य चरण पथ्याहारविहारादीना सेवन, द्रव्यस्य संवर्पण धनादिकस्य दान, कृष्णस्य स्मरण विष्णोर्नवधा भक्ति, शुभस्य करण नैमित्तिकभगवदुपासना, विप्रस्य सन्तर्पण ब्राह्मणस्य भोजनदक्षिणादिभि तृप्ति अश्वत्थभ्रमण पिप्पलवृक्षराजस्य प्रदक्षिणा, सुरत्नधरण

मणिमुक्ताहीरकादीना विभिन्नप्रकारेण धारण, दीनस्य सरक्षण भिक्षुकादीना भोजनपानादिभि पालनम् एतत्समूहात्मक किं वा पृथक् पृथक् शुभकर्मकरणम् अष्टविधज्वर वातादिभेदेन त्रिविध द्वन्द्वजादिभेदेन त्रिविध त्रिदोषजम् आगन्तुज च इत्यष्टप्रकारक ज्वर तथा हन्याद् विनाशयेद् यथा कुमुदिनीनाथ चन्द्रमा उग्रम् उत्कट तम अन्धकार नाशयति। ज्वरस्याष्टविधत्वे चरक —"अथ खल्वष्टाभ्य कारणेभ्यो ज्वर सञ्जायते मनुष्याणाम्, तद्यथा–वातात् पित्तात् कफात्, वातपित्ताभ्या, पित्तकफाभ्या, वातपित्तश्लेष्मभ्य आगन्तोरष्टमात् कारणात्॥ च० नि० अ० १॥ ज्वरोपचारो भावप्रकाशे—

तीर्थायतनदेवाग्निगुरुवृद्धोपसर्पणै। श्रद्धया पूजनैश्चापि सहसा शाम्यति ज्वर॥

तीर्थम् ऋषिजुष्ट जलम्। आयतन देवाधिष्ठित पुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीशैलादि। यथा वाग्भट —

ओषधयो मणयश्च सुमन्त्रा साधुगुरुद्विजदैवतपूजा।
प्रीतिकरा मनसो विषयाश्च घ्नन्त्यपि विष्णुकृत ज्वरमुग्रम्॥

उग्र भयङ्करम् उग्रकृतश्च। उग्र कपर्दी श्रीकण्ठ इत्यमर। शीताभिप्रायो वैष्णवज्वर। उष्णाभिप्रायो माहेश्वरज्वर। शार्दूलविक्रीडितम्।

हिन्दी—वेद-पुराणों का श्रवण, पथ्य आहार विहार आदि का सेवन, यथाशक्ति दान, भगवान् का नामस्मरण, शुभकार्यों का करना, भोजन-दक्षिणा आदि से ब्राह्मणों की तृप्ति, पीपल की परिक्रमा, उत्तम रत्नों का धारण, दीनों की रक्षा, इन शुभकार्यों के करने से आठ प्रकार के (वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सन्निपातज तथा आगन्तुज) ज्वरों का उस प्रकार विनाश हो जाता है जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय से अन्धकार का॥ १०॥

प्रकारान्तरेण कथयति—

सहस्रनेत्रस्य सहस्रबाहोः सहस्रवक्त्रस्य सहस्रमूर्ध्नः।
सहस्रपादस्य सहस्रनाम्नः सहस्रनाम्नां पठनं ज्वरघ्नम्॥ ११॥

व्याख्या—सहस्रनेत्रस्य दशशतनेत्रवत सहस्रबाहो सहस्रभुजयुक्तस्य सहस्रवक्त्रस्य सहस्रमुखस्य सहस्रमूर्ध्न सहस्रशिरस सहस्रपादस्य सहस्रचरणस्य, सहस्रनाम्न सहस्राभिधासमन्वितस्य सहस्रनाम्नां पठन जप रोगनाशकम्। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्। यथाह विष्णुसहस्रनामस्तुतौ—

भवत्यरोगो द्युतिमान् बल रूपगुणान्वित। रोगार्तो मुच्यते रोगात् ॥

चरकेणापि तदेव प्रतिपादितम्—

विष्णु सहस्रमूर्धान चराचरपतिं विभुम्। स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान् व्यपोहति॥
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्र हुतभक्ष हिमाचलम्। गङ्गा मरुद्गणाश्चेष्टया पूजयञ्जयति ज्वरान्॥
भक्त्या मातापितॄणा च गुरूणा पूजनेन च। ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन नियमेन च॥

४ च० चि०

जपहोमप्रदानेन वेदाना श्रवणेन च । ज्वराद् विमुच्यते शीघ्र साधूनां दर्शनेन च ॥
च चि अ. ३ ॥

हिन्दी—हजार नेत्र, वाहु, मुख, शिर, चरण तथा नाम वाले विष्णु भगवान के सहस्रनामस्तोत्र का पाठ करने से ज्वरों का विनाश होता है ॥ ९१ ॥

पुनरपि तमेव कथयति—

गणेश्वरो वा गरुडेश्वरो वा गौरीश्वरो वा दिवसेश्वरो वा ।
माहेश्वरी वा कुलदेवता वा सम्पूजनीया ज्वरिणा प्रयत्नात् ॥९२॥

व्याख्या—गणेश्वर गणेश वा गरुडेश्वर गरुडस्य ईश्वर स्वामी विष्णु वा गौरीश्वरो वा गौर्या पार्वत्या ईश्वर पति शिव वा दिवसेश्वरो वा दिवस्य ईश्वर सूर्य वा महेश्वरस्य इय माहेश्वरी पार्वती वा कुलदेवता रोगिण इष्टदेवता वा ज्वरिणा रोगिणा प्रयत्नात् स्वशक्त्यनुसार सम्पूजनीया पूजयितव्या स्यात् ।

यथाह चरक — 'सोम सानुचर देव समातृगणमीश्वरम् ।
पूजयन् प्रयत शीघ्र मुच्यते विषमज्वरात् ॥ च चि ३ ॥

सुश्रुतोऽप्याह— सम्पूजयेद द्विजान् गाश्च देवमीशानमम्बिकाम् ॥ सु उ ३४ ॥

"आरोग्य भास्करादिच्छेत्", अतो रोगिभ्यो भास्करस्योपासनाऽपि विहिता । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—रोगी को गणेश, विष्णु, शिव, सूर्य, देवी अथवा अपने कुलदेवता की यथाशक्ति पूजा एवं उपासना करनी चाहिये । इससे रोगमुक्ति होती है ।

विशेष—महर्षि चरक ने ज्वर आदि सभी रोगों की त्रिविध चिकित्सा का वर्णन निम्न प्रकार किया है—"त्रिविधमौषधमिति-दैवव्यपाश्रय युक्तिव्यपाश्रयं, सत्वावजयश्च, तत्र दैवव्यपाश्रयं-मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि, युक्तिव्यपाश्रय-पुनराहारविहारौषधद्रव्याणां योजना, सत्त्वावजयः-पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रह । च सू अ ११-५२ ॥ उसमें भी सर्वप्रथम दैवव्यपाश्रय का स्थान है। इसका उचित स्थान पर प्रयोग करने से आशातीत लाभ देखा जाता है। दैवव्यपाश्रय में वर्णित प्रणिपात का प्रयोग भिन्न-भिन्न देवता के प्रति धार्मिक बन्धनों के कारण होता है। शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य आदि सम्प्रदायों के लोग उसी देवता की उपासना गुरुपरम्परा के अनुसार करते हैं, अतएव उक्त श्लोक में पृथक्-पृथक् देवताओं के नामों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि सम्प्रदाय देवता दूसरे और कुलदेवता दूसरे भी होते हैं। यथा—शिव के उपासक का कुलदेव हनुमान। अतः सभी प्रकार के देवों का आराधन रोगी का कल्याण करता है ॥ ९२ ॥

ज्वरमुक्तावस्थाया वर्ज्यानि—

गुरुभोजनपानवाहनानि प्रमदास्नानतुषारवारिकोपान् ।
न भजेज्ज्वरवर्जितस्तु तावत्प्रभवेद् वह्निबलं बलञ्च यावत् ॥ ९३ ॥

व्याख्या—गुरुभोजन पाचकाग्नेरल्पबलत्वान्निषिद्धम् पानम् असात्म्य विरुद्ध च पान घृततैलवसादीना पान सेवन वाहनानि यानानि आयासदायकत्वान्निषिद्धानि प्रमदा स्त्रीसेवन स्नान स्नपन तुषारवारिकोपान् शीतजलप्रयोगान् कोप च ज्वरवर्जितोऽपि ज्वर-मुक्तोऽपि तावत् न भजेत् न सेवेत यावत् वह्निबल जाठराग्ने प्रदीप्तत्व तथा बल शारीरिक स्वाभाविकञ्च न भवेत । तत्रादौ विगतज्वरिणो लक्षणानि—

विगतक्लममन्तापमव्यथ विमलेन्द्रियम् ।
युक्त प्रकृतिमत्त्वेन विद्यात् पुरुषमज्वरम् ॥ च चि ३ ॥

एभिर्लक्षणैरुपेन विगतज्वरमपि रोगिण प्रतिषेधयेत् वर्जनीयपदार्थैश्चिकित्सक । यथाह चरक —

सज्वरो ज्वरमुक्तश्च विदाहीनि गुरूणि च । असात्म्यान्यन्नपानानि विरुद्धानि विवर्जयेत् ॥
व्यायाममतिचेष्टाश्च स्नानमत्यशनानि च । तथा ज्वर शम याति प्रशान्तो न च जायते ॥
व्यायामञ्च व्यवायञ्च स्नान चङ्क्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नबलवान् भवेत् ॥
च चि ३ ॥

यथाह वाग्भट — त्यजेदावललाभाच्च व्यायामस्नानमैथुनम् ।
गुर्वसात्म्यविदाह्यन्न यच्चान्यज्ज्वरकारणम् ॥
न विज्वरोऽपि सहसा सर्वाशीनो भवत्तथा ॥ अ हृ चि अ १ ॥

सर्वाण्यन्नानि भक्षयति इति सर्वान्नीन । मालभारिणी वृत्तम् ।

हिन्दी—घी-तैल आदि से बने भोजन प्रतिकूल अन्नपान, वाहन (कष्टप्रद सवारियां), मैथुन अथवा स्त्री सहवास, स्नान, शीतल जल आदि का सेवन तब-तक ज्वर मुक्त रोगी को नहीं करना चाहिये जबतक उसकी जाठराग्नि प्रदीप्त न हो जाय और शरीर में स्वाभाविक बल की उत्पत्ति न हो जाय ।

विशेष—उपर्युक्त सभी पदार्थ नीरोग पुरुष के सेवन योग्य हैं । स्वस्थ पुरुष भी यदि इनका सेवन मात्रा से अधिक कर ले तो वह भी अस्वस्थ हो जाता है, तब अस्वस्थ की तो बात ही क्या ? जहाँ प्रमदा शब्द का प्रयोग है वहाँ स्त्री रोगिणी के लिये पुरुष सहवास निषिद्ध समझना चाहिये ॥ ९३ ॥

इति श्रीमल्लोलिम्बराजविरचिते चमत्कारचिन्तामणौ ज्वरप्रतीकारो-
नाम प्रथमो विलास समाप्त ।

अथ द्वितीयो विलासः

अथ ज्वरातीसारनाशनो योग —

कुटजातिविषाकिराततिक्तैरमृताविश्वघनैः कषायकः ।
सकलज्वरनाशकारकः सकलातीसृतिनाशकारकः ॥ १ ॥

व्याख्या—कुटज कलिंग तस्य त्वक्, अतिविषा विषा किरात भूनिम्ब तिक्त- कुटकी अमृता गुडूची विश्व शुण्ठी घन मुस्ता एभि सप्तभिर्द्रव्यै निष्पादित कषाय सकलज्वरनाशकर सम्पूर्णज्वरशमन तथा सकलातीसृतिनाशकारक षड्विधातीसार- शामको भवति, वियोगिनीवृत्तम् । एष योगो ज्वरे, अतिसारे च पृथक् पृथग् लाभकर भवतु नाम किन्तु अध्यायानुरोधेन ज्वरातीसारनाशनोऽय विद्वद्भिराम्नात । यथाह चक्रदत्ते चक्रपाणि —

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकै ।
सर्वज्वरहर क्वाथ सर्वातीसारनाशन ॥

सामान्यचिकित्साक्रम - ज्वरातिसारिणामादौ कुर्याल्लङ्घनपाचने ।
प्रायस्त्वाममसम्बन्ध विना न भवतो यत ॥ भै र ॥

हिन्दी—कुटज, अतीस, चिरायता, कुटकी, गिलोय, सोंठ, नागरमोथा इन सात द्रव्यों का क्वाथ सम्पूर्ण अतीसारों का नाश करता है ।

विशेष—उपर्युक्त योग में कुटज की छाल के स्थान में अन्य ग्रन्थकारों ने इन्द्र- जौ (कुटजबीज) का ग्रहण करना लिखा है । किन्तु गुणधर्मों को देखने से ऐसा कोई महत्वपूर्ण अन्तर दोनों के बीच निघण्टुकारों ने नहीं लिखा है अधिकाश जो गुण इन्द्रजौ के हैं वे ही कुटजत्वचा के है । केवल एक विशेष गुण "त्रिदोषघ्न" अवश्य मिलता है । जिसकी साधारण ज्वरातीसार में कोई विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

ज्वरातीसार के सम्बन्ध में एक विशेष स्मरणीय बात यह है कि ज्वरनाशक तथा अतिसारनाशक योगों का मिश्रण करके ज्वरातीसार रोग में कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि ज्वरनाशक ओषधिया प्राय मल का भेदन करती है और अतिसारनाशक ओषधिया मल को रोकती हैं अत दोनों के सिद्धान्त एवं कार्य परस्पर विरुद्ध होते हैं ॥ १ ॥

ज्वरातिसारे चन्दनादिक्वाथ —

शीतोशीरकलिङ्गवालकघृकीपश्चाकधान्यामृता-
भूनिम्बाम्बुदवालविल्वकघृषामुस्तेन्द्रजैः साधितः।
क्वाथो माक्षिकसाक्षिको विजयते सर्वातिसाराञ्ज्वरान्
हृल्लासारुचिसर्वदाघवमिभिः सम्मिश्रितान् भो प्रिये ॥२॥

व्याख्या—भो प्रिये! शीत रक्तचन्दनम् उशीर नलद कलिंग इन्द्रयव वालक नेत्रवाला घृकी पाठा पश्चाक पशगन्धि (पचाग इति भाषायाम) धान्या धान्यकम् अमृता गुडूची भूनिम्ब किरात अम्बुद मुस्ता वालविल्वम् विल्वकर्कटी (आमविल्वम्) विषा अतिविषा मुस्ता भद्रमुस्ता (मुस्तकस्यैव जातिभेद) इन्द्रज कुटजम् एभिश्चतुर्दशौषधिभि साधितो निर्मित, माक्षिकमाक्षिक मधुमिश्रित क्वाथ, हृल्लासेन हृदयोत्क्लेशेन, अरुच्या भोजनम्प्रति अनिच्छया सर्वदाघेन सर्वप्रकारस्य दाहेन वमिभि वमनैं च सयुतान् सर्वातिसारान् पट्विधातिसारान् यथाह सुश्रुत —"पृथग्दोषै सर्वशश्चापि दोषै शोकेनान्य षष्ठ आमेनचोक्त", सु० उ० अ० ४० ॥ ज्वरान् किंवा ज्वरयुक्तान अतिसारान विजयते विनाशयतीत्यर्थ । एते हृल्लासादय यदा मन्दद्द्यन्ते तदा झटिति तत्प्रतीकार कर्तव्य यतो हि ज्वरे अतिसारे च एतेषाम्प्रादुर्भाव उपद्रवरूपेण भवति । शार्दूलविक्रीडितम् ।

हिन्दी—हे प्रिये! लालचन्दन, खस, इन्द्रजौ, नेत्रवाला, पाठा, पश्चाख, धनियां, गिलोय, चिरायता, नागरमोथा, कच्चा बेल का गूदा, अतीस, भद्रमुस्ता, कुटज की छाल इन चौदह द्रव्यों से निर्मित मधुयुक्त क्वाथ जीमिचलाना, अरुचि, दाह, वमन आदि उपद्रवों से युक्त सभी प्रकार के ज्वरातिसारों का विनाश करता है ॥२॥

अतिसारे पञ्चमूल्यादिक्वाथ —

पञ्चाङ्घ्रिघृक्यब्दवलेन्द्रबीजत्वक्सेव्यतिक्तामृतविश्वविल्वैः ।
क्वाथः सशूलान् सवमीन् सकासाञ्ज्वरातिसारानचिरान्निहन्ति ॥

व्याख्या—पञ्चाङ्घ्रि लघुपञ्चमूल (शालपर्ण्यादि पञ्चमूलम्) घृकी पाठा अब्द मुस्ता वला वाट्यालक इन्द्रबीजत्वक् बीज च त्वक् च अनयो समाहार इन्द्रबीजम् इन्द्रत्वक् च सेव्यम् उशीर तिक्ता कुटकी अमृता गुडूची विश्व शुण्ठी विल्वम आमश्रीफलम् एभि पञ्चदशद्रव्यै साधित कषाय सशूलान् शूलयुक्तान् सवमीन् वमिसहितान् सकासान् कासेनोपद्रुताञ्ज्वरातिसारान ज्वरेण युक्तानतिसारान् अचिरात् शीघ्रमेव निहन्ति विनाशयतीत्यर्थ । इन्द्रवज्रावृत्तम् । आमविल्वविषये भावमिश्र —

फलेषु परिपक्व यद् गुणवत्तदुदाहृतम् ।
विल्वादन्यत्र विज्ञेयमाम तद्धि गुणाधिकम् ॥

अत विल्वपदेनात्र आमविल्वप्रयोगो विहित । एप एव योगश्चक्रदत्तेऽपि लभ्यते—

तद्यथा— पञ्चमूलीवालविल्वगुडूचीमुस्तनागरै ।
पाठाभूनिम्बह्रीवेरकुटजत्वक्फलै श्रृतम् ॥
हन्ति सर्वानतीसाराञ् ज्वरदोष वर्मि तथा ।
सशूलोपद्रव श्वास कास हन्यात् सुदारुणम् ॥

यत्तु पञ्चमूलीशब्देनात्र लघुपञ्चमूल्या प्रयोगो विहित तत्र विपये वृन्द —

पञ्चमूली तु सामान्याद् योज्या पित्ते कनीयसी ।
महती पञ्चमूलीति वातश्लेष्माधिके तथा ॥

हिन्दी—लघुपञ्चमूल, पाठा, नागरमोथा, वला, इन्द्रजौ, कुटज, खस, कुटकी, गिलोय, सोंठ, कच्चा बेल की गुद्दी इन पन्द्रह द्रव्यों से निर्मित कपाय शूल, वमन, कास युक्त अतिसारों का शीघ्र विनाश करता है।

विशेष—यह क्वाथ प्राय' सभी प्रकार के अतिसारों में लाभ करता है ॥ ३ ॥

उभयपञ्चमूलस्य ज्वरातिसारे प्राशस्त्यम्—

कफाधिके वा पवनाधिके वा द्वयाधिके वा गुरुपञ्चमूलम् ।
पित्ताधिकेस्याल्लघुपञ्चमूलं पुनः पुनः पृच्छसि किं मृगाक्षि ॥४॥

व्याख्या—हे मृगाक्षि ! मृगस्य हरिणस्य अक्षिणीव अक्षिणी यस्या सा तत्सम्बुद्धौ पुन पुन वारम्वार किं पृच्छसि ? कथ शङ्कसे, अर्थात् नि शङ्का भूत्वा त्वया कफाधिके श्लेष्मप्रधाने ज्वरातिसारे किंवा पवनाधिके वातोल्वणे ज्वरातिसारे अथवा द्वयाधिके उभयदोषवृद्धे ज्वरातिसारे गुरुपञ्चमूलम् महत्पञ्चमूलम् प्रयोक्तव्यम् । पित्ताधिके पित्तोत्तरे ज्वरातिसारे लघुपञ्चमूल कनीय-पञ्चमूलस्य प्रयोगो विधेय ।

गुरुपञ्चमूलस्य गुणा — पञ्चमूल महत्तिक्त कपाय कफवातनुत् ।
मधुर कासश्वासघ्नमुष्ण लघ्वग्निदीपनम् ॥

लघुपञ्चमूलस्य गुणा — पञ्चमूल लघु स्वादु वल्य पित्तानलापहम् ।
नात्युष्ण वृंहण ग्राहि ज्वरश्वासाश्मरीप्रणुत् ॥

हिन्दी—कफप्रधान या वातप्रधान अथवा कफ-वातप्रधान (द्वन्द्वज) ज्वरातिसार में वृहत् पञ्चमूल का और पित्तप्रधान ज्वरातिसार में लघु पञ्चमूल का प्रयोग करना चाहिये। हे मृगनयनी ! इस शास्त्रसम्मत सिद्धान्त के बारे में तू वार-वार क्यों पूछती है ? ।

विशेष—अनेक स्थलों में लोलिम्वराज ने अपनी प्रियतमा रत्नकला को विदुषी कहा है और इनके इस सवादात्मक ग्रन्थ से ज्ञात भी होता है कि वह विदुषी रही होगी किन्तु इस पद्य में "पुन पुन किं पृच्छसि" वाक्य के द्वारा उसका मुग्धात्व अभिव्यञ्जित किया गया है ॥ ४ ॥ उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

शोफातिसारे क्रियाक्रम —

सदेवदारुः सविषः सपाठः सजन्तुशत्रुः सघनः सतीक्ष्णः।
सवत्सकः क्वाथ उदाहृतोऽसौ शोफातिसारद्विपराजसिंहः ॥ ५ ॥

व्याख्या—एष देवदार्वादियोग शोफातिसारद्विपराजसिंह शोफेन जात अतिसार स एव द्विपराजो गजराज तस्य विनाशाय सिंह एव। सदेवदारु पूतिकाष्ठसहित सविष अतिविषासमेत सपाठ अम्बष्ठयायुक्त सजन्तुशत्रु विडङ्गेन सह सघन मुस्तकेन साक सतीक्ष्ण मरिचेन सम सवत्सक कुटजेन सार्धम् उदाहृत कथित असौ वर्ण्यमान क्वाथ शोफातिसार जयतीत्यर्थ। श्लोकेऽस्मिन् सर्वत्र "सहस्य स स्यात्सशायाम्" इत्यनेन सहस्य सादेश। चक्रदत्ते योगोऽयं विडङ्गादिक्वाथनाम्नोल्लिखित, तद्यथा—

विडङ्गातिविषामुस्तदारुपाठाकलिङ्गकम्।
मरिचेन समायुक्त शोथातीसारनाशनम् ॥

भावप्रकाशेऽपि— शोथघ्नीन्द्रयवौ पाठा श्रीफलातिविषाघना।
कथिता सोषणा पीता शोथातीसारनाशना ॥

एष शोथातिसार षड्विधेष्वतिसारेषु नैव गण्यते किन्तु आमातिसारे मूर्खभिषजा प्रयुक्तस्य सग्राहकौषधिरूपो विकार। यथाह भावमिश्र —

नामे सग्राहक दद्यादतिसारे कदाचन।
सगृहीतो बलादामो विकारान् कुरुते बहून् ॥

बलाद् भेषजबलात्, तत्र विकारा —ग्रहण्याध्मानशूलगुल्मशोथोदरज्वरादय। आतङ्कदर्पणे यद्यपि शोफातिसार असाध्यश्रेण्या पठित, यथा—

शोथ शूल ज्वर तृष्णा काम श्वासमरोचकम्।
छर्दि मूर्च्छा च हिक्का च दृष्ट्वातीसारिण त्यजेत् ॥

तथापि यदि रोगी जितेन्द्रिय चिकित्साया चतुष्पादसमन्वित युवा मन्दाग्निरहित स्यात् तदा एष देवदार्वादिक्वाथ प्रयुक्तश्चेद् रोगिणे जीवन भिषजे साफल्य च प्रयच्छतीति ग्रन्थकर्तुराशय। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्।

हिन्दी—हे प्रिये ! देवदारु, अतीस, पाठा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, काली मिरच, कुटज की छाल इन सात द्रव्यों से निर्मित क्वाथ शोथज अतिसाररूपी गजराज का विनाश करने के लिये सिंह के समान समर्थ है।

विशेष—वैद्यवर लोलिम्बराज ने अपने द्वारा रचित "वैद्यजीवन" नामक दूसरे चिकित्साग्रन्थ में इस योग का प्रयोग "शोकातिसार" के लिये लिखा है। जब कि इसकी चिकित्सा भावमिश्र के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से होनी चाहिये—

भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत्।
तयोर्वातहरा कार्या हर्षणाश्वासने क्रिया ॥

किन्तु इस ग्रन्थ में "शोफातिसारद्विपराजसिंह", लिखकर उन्होंने यह स्वीकार किया है कि यह योग शोथज अतिसार के लिये है, यही अन्य आचार्यों का भी सम्मत मत है ॥ ५ ॥

अतिसारे धान्यादिक्काथ —

प्रौढे यौवनगर्विते प्रियतमे धान्येन किं किं श्रिया
किं विश्वेन पयोधरेण तव किं किं वालकेनापि मे।
ज्ञात्वा मोहमयीं प्रपञ्चरचनां गोपीपतिं ध्यायतो
ऽतीसारोऽग्निशमामशूलनिकरो धान्यादिभिः क्षीयते ॥६॥

व्याख्या—हे प्रौढे नवोदयद्यौवनेऽत एव यौवनगर्विते यौवनेन तारुण्यमदेन गर्विते मत्ते, प्रियतमे प्राणवल्लभे! मोहमयीं मोहनात्मिकां प्रपञ्चरचनां जगत सृष्टिं ज्ञात्वा विचार्य गोपीपतिं राधाकृष्णं ध्यायतोऽभ्यर्चयत मे मम धान्येन धनेन व्रीह्यादिना किं व्यर्थमेव, श्रिया लक्ष्म्या किं, विश्वेन संसारेण किं, तव पयोधरेण पीनोन्नतस्तनयुगलेन किं वालकेन पुत्रेणापि किम् अर्थात् एतत् सर्वं व्यर्थमिति, भक्तिपक्षे। चिकित्सापक्षे तु—धान्येन धन्याकेन। श्रिया आमविल्वेन विश्वेन शुण्ठ्या, पयोधरेण मुस्तकेन वालकेन ह्रीवेरेण साधितेन निर्मितेन चूर्णेन वा क्वाथेन अतीसार मलातिस्रुति अग्निशम मन्दाग्नि आम आमातिसार शूल च एतेषां निकर क्षीयते।

धान्यपदेन साहित्ये सप्तदशधान्यानां ग्रहणम्—

व्रीहिर्यवो मसूरो गोधूमो मुद्गमाषतिलचणकाः।
अणवः प्रियङ्गुकोद्रवमकुष्ठा शालिकाढ्यः।
किञ्च कलायकुलत्थौ शणश्च सप्तदश धान्यानि ॥ कोष ॥

चक्रपाणिरप्येन समर्थयति—धान्यकं नागरं मुस्तं वालकं विल्वमेव च।
आमशूलविवन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—यौवन के मद से मदमत्त युवती प्रियतमे! इस संसार को मोहमयी रचना समझने वाले तथा श्रीकृष्ण के भजन में तल्लीन मेरे लिये क्या धन-धान्य, क्या लक्ष्मी, क्या संसार, क्या तुम्हारे स्तनयुगल, क्या वालक-वालिकायें आदि सभी व्यर्थ हो गये हैं। यह अर्थ भक्तिपक्ष का है। चिकित्सा पक्ष में इसका अर्थ निम्नलिखित है—हे प्रियतमे! धनियाँ, वेल की गिरी, सोंठ, नागरमोथा नेत्रवाला इन पाँच द्रव्यों से बना हुआ चूर्ण अथवा क्वाथ अतिसार, अग्निमान्द्य, आमदोष तथा शूल इनके समूह को नष्ट करता है। शार्दूलविक्रीडितम्।

विशेष—आचार्य डल्हण का कथन है कि अतिसार में जहाँ काष्ठौषधियों को द्रवरूप में देने का विधान है वहाँ द्रव की मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये अपितु क्वाथ्य द्रव्यों को चूर्णरूप में देना अधिक हितकर होता है। अतएव उक्त पद्य में चूर्ण एवं क्वाथ का उल्लेख न होने के कारण यहाँ दोनों अर्थ तथा आचार्य डल्हण का अभिमत भी प्रस्तुत कर दिया है ॥ ६ ॥

पित्तातिसारे क्वाथ —

धान्याम्ब्वब्दश्रियां पित्तजातिसारो निवार्यते ।
केनाऽत्र ज्ञायते कर्ता त्वां विना विमलानने ॥ ७ ॥

व्याख्या—धान्य धान्यकम् अम्बु ह्रीवेरम् अब्द मुस्तक श्री आमबिल्वम् एषा चतुर्णा केन जलेन पित्तातिसार निवार्यते दूरीक्रियते। हे विमलानने ! विमल न्यच्छव्यङ्ग्यादि-कलङ्करहितम् अत एव निर्मलम् आनन मुख यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, त्वा विना अत्र पद्ये केन कर्ता ज्ञायते। इत्यत्र चिकित्साव्यपदेशेन कर्तृगुप्तपद्यस्य रचना कृतवान् कवि लोलिम्बराज । अस्मिन् पद्ये रत्नकलाया चिकित्साज्ञानादृते व्याकरणस्य ज्ञानेऽपि प्रौढि अनुमीयते। अनुष्टुप्छन्द.।

हिन्दी—धनिया सुगन्धवाला, नागरमोथा, कच्चे बेल की गिरी इन चार द्रव्यों के जल (क्वाथ) से पित्तातिसार का शमन होता है। इस पद्य में कर्ता गुप्त है, हे—सुन्दरमुखी ! उसको तुम्हारे बिना कोई नहीं जान सकता।

विशेष—इस पद्य का मूलपाठ "बुधान्याब्दांश्रिया" है जो प्रयोग की तथा व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। ग्रन्थकर्ता के अभिप्राय तथा ग्रन्थान्तरों के दृष्टिकोण के अनुसार उक्त पाठ को "धान्याम्ब्वब्दश्रिया" इस प्रकार ठीक किया गया है। इस पद्य के निर्माणकाल में ग्रन्थकर्ता की प्रवृत्ति चिकित्सानिर्देश के साथ-साथ चित्रकाव्य की ओर झुकी प्रतीत होती है। अतएव यहाँ कर्तृगुप्त पद्य को प्रस्तुत किया है ॥ ७ ॥

अतिसारे मोचरसादिचूर्णम्—

मोचरसौषधवत्सकरोध्रैर्बिल्वपयोदमदाकुसुमैश्च ।
चूर्णमिदं गुडतक्रनिपीतं हन्त्यचिरादतिसारमुदारम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—मोचरस शाल्मलीनिर्यास औषध शुण्ठी वत्सकम् इन्द्रयव रोध्र गालव बिल्वम् आमश्रीफल पयोद मुस्ता मदाकुसुम धातकीपुष्पम् एभि सप्तभिर्द्रव्यै कृत चूर्ण गुडेन सयुत यत् तक्र तेन निपीत तक्रेण सह सेवितम् उदारम् उग्र पुरातन प्राचीनम् अतिसारम् शीघ्रमेव हन्ति विनाशयति। यथाह भावमिश्र ।

मुस्तावत्सकबीज मोचरसो विल्वधातकीलोध्रम् ।
गुटमथित प्रयुक्त गङ्गामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात् ॥

तदेव भैपज्यरत्नावल्याम्— विल्वाब्दधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसा समाः ।
पीतारुन्धन्त्यतीसार गुडतक्रेण दुर्जयम् ॥

हिन्दी—मोचरस, सोंठ, इन्द्रजौ, लोध, कच्चे बेल का गूदा, नागरमोथा, धाय के फूल इनके चूर्ण को गुड़ और मठा के साथ सेवन करने से शीघ्र ही भयकर अतिसार शान्त हो जाता है। दोधकवृत्तम् ।

विशेप—अन्य ग्रन्थकारों ने इस योग के गुणों से प्रभावित होकर यहा तक लिख दिया है कि अतिसार को रोकना तो कौन बड़ी बात है, यह योग तो वहती गगा को भी रोक सकता है। इसमें अतिशयोक्ति अलकार है ॥ ८ ॥

अतिसारे शुण्ठ्यादिचूर्णम्—

कल्याणि कल्पलतिके ललिताङ्गयष्टे !
हस्ते विलोलकमले ! ललने ! शृणु त्वम् ।
शुण्ठीमदाकुसुममोचरसाजमोदा-
स्तक्रान्विताः प्रशमयन्त्यतिसारसारम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—हे कल्याणि ! शुभगुणयुक्ते ! कल्पलतिके तद्वद् इच्छापूर्तिकारिणि ललिताङ्गयष्टे ललिता शोभना अङ्गयष्टि यस्या सा तत्सम्बुद्धौ हस्ते करे विलोलकमले विलोल विशेपेण चञ्चल कमल पद्म यस्या सा तत्सम्बोधने, इत्थभूते ललने प्रिये त्वम् शृणु मद्वाक्यमाकर्णय-शुण्ठी महौपध मदाकुसुम धातकीपुष्प मोचरस शाल्मलीनिर्यास अजमोदा उग्रगन्धा चूर्णीकृता एते पदार्था तक्रान्विता तक्रेण सह सेविता अतिसारस्य रोगविशेपस्य सार मलम् प्रशमयन्ति स्थिरीकुर्वन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

हिन्दी—हे कल्याणि कल्पलता के समान इच्छाओं को पूर्ण करने वाली सुन्दर शरीर से शोभित कमल को हाथ में लेकर घुमाने वाली प्रिये ! तुम सुनो, सोंठ, धाय के फूल, मोचरस, अजवायन इन ओपधियों के चूर्ण को मठा के साथ सेवन करने से भीपण अतिसार शान्त हो जाता है ॥ ९ ॥

आमलकीचूर्णप्रयोग —

भो वैद्यनाथा ! यदहं ब्रवीमि तद् यस्य कस्यापि पुरो न वाच्यम् ।
भूधात्रिकाया रज एकमेव दध्नान्वितं हन्त्यतिसारजालम् ॥१०॥

व्याख्या—रत्नकला स्वपति लोलिम्बराजम्प्रति अतिसारचिकित्सामाह-भो वैद्यनाथा सम्बोधनेनानेन तात्कालिकवैद्येषु अस्य श्रेष्ठत्वमनुमीयते, यदह ब्रवीमि तद् उच्यमानं वच यस्य कस्यापि पुर कुपात्रस्याऽग्रे न वाच्य न कथनीयम् । अथ सा कथयति—एकमेव—

भूधात्रिकाया भूम्यामलक्या रज चूर्ण दध्नान्वित सेवित सत् अतिसारजालम् अतिसार-समूह हन्ति विनाशयति । अत्र भूधात्रिकापद विचारणीयम्—भूधात्रीपदेन भूम्यामलकी—ग्राह्या आहोस्वित् केवलम् आमलकी, यतोहि आमलकी भूम्यामलक्या अपेक्षया गुणवत्तरा, तद्यथा— हन्ति वात तदम्लत्वात् पित्त माधुर्यशैत्यत ।
कफ रूक्षकषायत्वात्फल धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥ भा प्र ॥

भूम्यामलक्या गुणा — भूधात्रीवातकृत्तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ।
पिपासाकासपित्तास्रकफकण्डूक्षयापहा ॥ तदेव ॥

हिन्दी—रत्नकला अपने पतिदेव से कहती है—हे वैद्यराज ! जिस योग का वर्णन मैं आप से कर रही हूँ उसको किसी (अयोग्य व्यक्ति) से मत कहिये, भुइआंवला का चूर्ण दही में मिलाकर चाटने से सम्पूर्ण अतिसारों का शमन हो जाता है । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १० ॥

अतिसारो श्यामाप्रयोग —

अतिसारप्रशमनी परमानन्ददायिनी ।
वृद्धिदा तनुवह्नेश्च श्यामा श्यामेव शोभते ॥ ११ ॥

व्याख्या—श्यामा गुणवती कान्ता तल्लक्षणानि यथा—
श्यामा गुणवती कान्ता प्रिया मधुरभाषिणी ।
रतेषु धृष्टा या नारी सा स्त्री वृष्यतमा मता ॥

शोभते का इव श्यामेव षोडशवार्षिकी स्त्रीव कथम्भूता सा परमानन्ददायिनी मान सोल्लासकारिणी पुन कथम्भूता सा अतिसारप्रशमनी अत्यधिक सार अतिसारो बल तस्य प्रशमनी प्रकर्षेण विनाशयित्री, यथोक्त तन्त्रान्तरे—"सद्योबलहरा नारी", पुन कथम्भूता सा अतनुवह्नेश्च वृद्धिदा अतनु काम अनङ्ग तस्य वह्ने वृद्धिदा वर्धयित्री कामाग्निवर्धिनी । इति श्लेषप्रतिभोत्थापितोऽर्थ ।

चिकित्सापक्ष—श्यामा प्रियङ्गु श्यामा इव कृष्णसारिवा इव शोभते कथम्भूता श्यामा अतिसारप्रशमनी अतिसाररोगविक्षेपशामिका, अत एव परमानन्ददायिनी नीरोगकर्तृत्वात्, तथा तनुवह्नेश्च वृद्धिदा तनुश्चासौ वह्नि मन्दाग्नि तस्य वृद्धिदा प्रदीपयित्री, अथवा तनुस्थितो वह्नि जाठराग्नि तस्य वर्धयित्री । तत्र प्रियङ्गुगुणानाह—

प्रियङ्गु शीतला तिक्ता तुवराऽनिलपित्तहृत् ।
रक्तातियोगदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा ॥
वान्तिभ्रान्त्यतिसारघ्नी रक्तजाड्यविनाशिनी । निघण्टु ॥

कृष्णसारिवागुणानाह— सारिवायुगल स्वादु स्निग्ध शुक्रकर गुरु ।
अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम् ॥
दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम् ॥ तदेव ॥

"स्तोकाल्पक्षुल्लका सूक्ष्म श्लक्ष्ण दभ्र कृश तनु", "स्वग्देहयोरपि तनु", उभयत्राप्यमर, अत्र श्लेषालङ्कार, अनन्वयालङ्कारश्च ॥ अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—अतिसार का शमन करने तथा मन्दाग्नि को प्रदीप्त करने के कारण परम आनन्द को देने वाली श्यामा = प्रियंगु अथवा नारिवा उस श्यामा = षोडशी की भांति है जो कामदेव को प्रदीप्त कर सहवास के कारण बल = वीर्य को घटाने के साथ-साथ परम आनन्द का अनुभव कराती है ॥ ११ ॥

अग्निवर्धकोऽतीसारनाशकश्च योग —

पुटपाकविपाचितारलुत्वगसद्दीप्तहुताशदीपनी ।
मधुमोचरसप्रयोजिता सहसाऽतिस्रुतिनाशकारिणी ॥ १२ ॥

व्याख्या—पुटपाकविपाचिता पुटपाकविधिना पाचिता अरलुत्वक श्योनाकत्वक् मधुमोचरसप्रयोजिता मधुना क्षौद्रेण मोचरसेन शाल्मलीवेष्टेन सयुना सती सहसा अतिति असद्दीप्तहुताशदीपनी न सदीप्तो न सम्यग्वर्धितो यो हुताशो जाठराग्नि तस्य दीपनी तथा अतिस्रुति अतिसार तस्य नाशकारिणी च। अतिसारे स्वभावत अग्नि मान्द्य गच्छति त प्रदीप्यैषा अरलुत्वक् अतिसार विनाशयतीत्यर्थ । उक्तञ्च शार्ङ्गधरसंहितायाम्—

अरलुत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपन ।
मधुमोचरसाभ्याञ्च युक्त सर्वातिसारजित् ॥

सुश्रुते किञ्चिद्विशिष्याह—
त्वक्पिण्ड दीर्घवृन्तस्य पद्मकेसरसयुतम् ।
काश्मरी पद्मपत्रैश्चावेष्ट्य सूत्रेण सदृढम् ॥
मृदावलिप्त सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत् ।
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय त तत ॥
शीत मधुयुत कृत्वा पाययेतोदरामये ॥ सु उ अ ४०

अथ पुटपाकप्रकार —
पुटपाकस्य मात्रेय लेपस्याङ्गारवर्णता ।
लेपञ्च द्व्यङ्गुल स्थूल कुर्याद् वाऽङ्गुष्ठमात्रकम् ॥
काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् ।
पलमात्र रसो ग्राह्य कर्षमात्र मधु क्षिपेत् ॥

हिन्दी—पुटपाक विधि से सोनापाठा (टेण्टु) का रस निकाल कर उसमें मोचरस और मधु मिलाकर सेवन करने से मन्द अग्नि प्रदीप्त होकर अतिसार का शमन हो जाता है। वियोगिनीवृत्तम् ॥ १२ ॥

जीर्णातिसारनाशनो योग —

आम्रास्थिलोध्रवृकियष्टिकलिङ्गबीज-
कट्वंगमुस्तकमदातिविषांबुविश्वैः ।

जम्बूफलामलकबिल्वयुतैश्च चूर्ण-
जीर्णाखिलातिसृतिहारि सतण्डुलाम्बु ॥ १३ ॥

व्याख्या—आम्रास्थि आम्रबीज, तद्गुणानाह—

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम् ।
ईषदम्लं च मधुरं तथा हृदयदाहनुत् ॥ निघण्टु ।

रोध्र रोध्र शूर्को पाठा यष्टि मधुयष्टि कलिङ्गबीजम् इन्द्रयव कट्वङ्ग श्योनाक मुस्तकं मुस्ता मदा धातकी अतिविषा विषा अम्बु ह्रीवेर विश्व शुण्ठी जम्बूफल जाम्बवम् आमलक धात्री बिल्वम् आमबिल्वम् एतेषा द्रव्याणा चूर्णं तण्डुलाम्बुना सह सेवित जीर्णाखिलातिसृतिहारि सर्वविधजीर्णातिसारविनाशकारि प्रदिष्टम् । एष योग भैषज्यरत्नावलीस्थस्वल्पगङ्गाधरचूर्णेन सह प्राय साम्य भजते, तद्यथा—

मुस्तसैन्धवशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवत्सकै ।
बिल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयववालकै ॥
आम्रबीजमतिविषा लज्जाचेति सुचूर्णितम् ।
क्षौद्रतण्डुलतोयाभ्या जयेत् पीत्वा प्रवाहिकाम् ॥
सर्वातीसारशमन सर्वशूलनिसूदनम् ॥

हिन्दी—आम की गुठली, पठानी लोध, पाठा, मुलेठी, इन्द्रजौ, सोना पाठा, नागरमोथा, धाय के फूल, अतीस, हाऊबेर, सोंठ, जामुन की गुठली, आवला, कच्चे बेल का गूदा इन सब का कूट पीसकर कपड़छान चूर्ण कर ले। इस चूर्ण का चावल के धोवन के साथ सेवन करने से सब प्रकार के पुराने अतिसारों का विनाश हो जाता है। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १३ ॥

रक्तातिसारे उशीरादिक्वाथ —

बाले कोमलकुन्तलेऽमलकुले केलीकलालालसे
मालामालिनि कोकिलावलिकलालापे विलासाचले ।
चञ्चत्कुण्डलमण्डले विजयते रक्तामशूलान्वितं
सोशीरं कुटजाब्दबिल्वकविषोदीच्यैः कषायः कृतः ॥१४॥

व्याख्या—सोशीरम् उशीरेण नलदेन सहित कुटज वत्सक अब्द मुस्ता बिल्वकम् आम्रबिल्व विषा अतिविषा उदीच्य ह्रीवेरम् एभि पञ्चभि द्रव्यै कृत कषाय रक्तामशूलान्वितम् अतिसार विजयते विनाशयति । योगम् उक्त्वा बाला विशिनष्टि—हे बाले उद्यद्-यौवने कोमलकुन्तले कोमला च ते कुन्तला यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, अमलकुले निर्मलवशवति, केलीकलालालसे कामक्रीडाभिलाषिणि, मालामालिनि मौक्तिकै किंवा पुष्पादि-स्रग्भि सुशोभिते कोकिलावलिकलालापे कोकिलानामावलि पक्ति तस्या कल मधुरम्

आलाप पक्षिविराव तद्वन् मधुरभाषिणि, विलासाचले हावभावादिभि समृद्धे, चञ्चत् कुण्टलमण्टले चञ्चले तरले कुण्टलयो कर्णाभूषणयो मण्टले चक्रवाले यस्या सा तत्सम्बुद्धौ इत्थभूते हे बाले एष उशीरादिक कषाय रक्तातिसार विजयते। सुश्रुतोऽप्याह—

विल्वशक्रयवाम्भोदबालकातिविषाकृत ।
कषायो हन्त्यतीसार साम पित्तसमुद्भवम् ॥ सु० उ० ४० ॥

चक्रपाणिरपि चक्रदत्ते—सवत्सक सातिविष सबिल्व सोदीच्यमुस्तश्च कृत कषाय ।
सामे सशूले सह शोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥

हिन्दी—निर्मलकुल में उत्पन्न घुघुराले वालों से युक्त हास्यादि कला में प्रवीण मणिमुक्ता आदि की मालाओं से विभूषित कोकिला के समान मधुरभाषिणी हावभावादिविलासों से सम्पन्न चञ्चल कुण्डलों से अलकृत हे प्रिये! निम्नलिखित द्रव्यों द्वारा सिद्ध किया हुआ क्वाथ रक्तातिसार, आमातिसार, तथा शूल (मरोड़) युक्त अतिसार का शमन करता है। क्वाथ्य द्रव्य–खस, कुरैया की छाल, नागरमोथा, कच्चे बेल की गिरी, अतीस और नेत्रबाला। शार्दूलविक्रीडितम्।

विशेष—कुटज शब्द से रक्तातिसार तथा ज्वर में इन्द्रजौ का ग्रहण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुटज की छाल का प्रयोग होना चाहिये। एतदर्थ इसके गुण-धर्मों पर ध्यान दें ॥ १४ ॥

अथ चन्दनकल्क —

चन्दनं विमलतण्डुलाम्बुना संयुतं मधुयुतं सितायुतम्।
तृड्विखण्डनमसृग्विखण्डनं खण्डनं प्रचुरदाहमेहयो· ॥ १५ ॥

व्याख्या—विमलतण्डुलाम्बना निर्मलाना तण्डुलाना शालिषष्टिकादीनाम् अम्बुना धौतजलेन सहित घृष्ट चन्दन श्वेतचन्दन मधुयुत सितायुत क्षौद्रशर्करामिश्रित सेवित सत् तृड्विखण्डन तृट् तृषा तस्या विखण्डन शमनम् असृग्विखण्डन रक्तातीसृतिनाशन खण्डन प्रचुरदाहमेहयो प्रचुरौ प्रवृद्धौ यौ दाहमेहौ दाह ऊष्मा मेह प्रमेह तयो खण्डन करोतीत्यर्थ।

यथाह—भावमिश्र — पीत मधुसितायुक्त चन्दन तण्डुलाम्बुना।
रक्तातीसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत ॥

हिन्दी—घिसे हुए सफेद चन्दन का चावलों के धोवन में मधु एव मिश्री मिलाकर सेवन करने से तृषा (प्यास) रक्तातिसार दाह तथा प्रमेह की शान्ति होती है। रथोद्धतावृत्तम्।

विशेष—यदि पित्तज अतिसार हो तो सफेद चन्दन का उपयोग, रक्तज अतिसार में लाल चन्दन का प्रयोग और यदि रक्तपित्तातिसार हो तो दोनों चन्दनों का साथ-साथ व्यवहार करना चाहिये ॥ १५ ॥

समधुजलप्रयोग —

जयति जीवनदायकजीवनं समधु शीतलमुत्पललोचने ।
अतिसृतौ गुणगौरवगर्विते परवधूगमनं शुचितां यथा ॥ १६ ॥

व्याख्या—हे गुणगौरवगर्विते गुणानां सौन्दर्यादीना गौरवेण महत्त्वेन गर्विते प्रमत्ते तथा च उत्पललोचनने कमलनेत्रे शीतलं शैत्ययुक्तं जीवनदायकं जीवनं ददातीति यत् जीवनं जलं तत् समधु मधुना सह समेत्य अतिसृतौ अतिसाररोगान् तथा जयति यथा परवधूगमनम् अन्यागनाऽऽसक्ति शुचिता पवित्रताम् । यथा परवधूगमनशीलस्य पुंस पवित्रविचारधारा प्रणश्यति तथैव योगोऽतिसारं जयतीत्यर्थः । तत्र जलस्य गुणा —

पानीयं श्रमनाशनं क्लमिहरं मूर्च्छापिपासापहं
तन्द्राच्छर्दिविबन्धहृद् बलकरं निद्राहरं तर्पणम् ।
हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलं
लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम् ॥ अ० नि० ॥

हिन्दी—अपने सौन्दर्यादि गुणों से गर्वित तथा कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली प्रिये ! प्राणों की रक्षा करने वाले जल का मधु मिलाकर सेवन करने वाला अतिसार का रोगी शीघ्र ही उस प्रकार उक्त रोग से मुक्त हो जाता है जिस प्रकार व्यभिचारी पुरुष पवित्रता से । द्रुतविलम्बित वृत्तम् ॥ १६ ॥

अतिसारे मुस्ताजलप्रयोग —

अये घनवनस्यास्य मधुयुक्तस्य सेवने ।
सातिसारी नरो योऽस्ति सोऽधिकारी भवेत् सुखी ॥ १७ ॥

व्याख्या—अये ! इति रत्नकलाम्प्रति सम्बोधनम्, घनवनस्यास्य घनं मुस्ता वनं जलं तस्य मधुयुक्तस्य पुष्परससमन्वितस्य अस्य सेवने यः अतिसारी अतिसाररोगवान् नरः अधिकारी अस्ति स सुखी भवेत् । अथ तात्पर्यार्थः —मुस्ताजलस्य सेवनेन अतिसार-निवृत्तिर्भवतीति । अये ! प्रेयसि ! मधुयुक्तस्य वासन्तीकुसुमसम्मिलितस्य अस्य घनवनस्य घनं च तत् वनं तस्य निबिडोद्यानस्य सेवने यः अत्यधिकः सारः बलं यस्यास्तीति अतिसारी तेन सह वर्तते इति सातिसारी अत्यधिकवीर्यवान् नरः पुमान् अस्ति स अधिकारी भवेत् सुखी स्यात् । इत्यपरोऽर्थः । श्लेषालङ्कारः । यथात्र पद्यकारेण केवलं मुस्ताजलप्रयोगो विहितः, न तथा वाग्भटे तत्र तु मुस्ताक्वाथमुस्ताक्षीरप्रयोगौ निर्दिष्टौ—

प्रथमं मुस्ताक्वाथः — "मुस्तकं कषायमेवं वा पयः मधुसमायुतम् ॥ सु० उ० ४० ॥
मुस्ताक्षीरम्— "पयस्युत्क्वाथ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणेऽम्भसि ।
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामसमीरणम् ॥ वा० चि० ९ ॥

अत्र पर्यायपरिकल्पनाबलेन एषोऽपि योगः मुस्ताक्षीराभिधानः स्यात् । यथा—वनशब्द

जलवाची जलमेव पय शब्देन व्यवह्रियते यस्यार्थ दुग्धम् अत वनशब्द• परम्परया दुग्धवार्ची स्वीक्रियेत चेत् "मुस्ताक्षीर" प्रयोगस्य सिद्धि साधु सम्भवति । तस्यविधिर्यथा—

द्रव्यादष्टगुण क्षीर क्षीरात्तोय चतुर्गुणम् ।
क्षीरावशेष कर्तव्य क्षीरपाके त्वय विधि ॥

अत्र प्रयोगाय केवल छागीदुग्धमेव ग्राह्यम् । तस्य गुणा —

छाग कषाय मधुर शीत ग्राहि तथा लघु ।
रक्तपित्तातिसारघ्न क्षयकासज्वरापहम् ॥ भावप्रकाशे ॥

सुश्रुतोऽप्याह— यथामृत तथा क्षीरमतिसारेषु पूजितम् ।
चिरोत्थितेषु तत्पेयमपा भागैस्त्रिभि शृतम् ॥ सु उ ४० ॥

चक्रपाणिरपि— जीर्णेऽमृतोपम क्षीरमतिसारे विशेषत ।
छाग तद्भेषजै सिद्ध देय वा वारिसाधितम् ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—हे प्रिये ! नागरमोथा का जल (क्वाथ) यदि मधु मिलाकर सेवन किया जाय तो वह अतिसार का रोगी अपने रोग से मुक्त हो जाता है । अनुष्टुप् ।

विशेष—यदि हम इसको वाग्भट के अनुसार "मुस्ताक्षीर" मान लेते है, तो इसका प्रकार निम्नलिखित होगा । नागरमोथा की जड़ २ तोला, बकरी का दूध १६ तोला, जल ४८ तोला इन सबको मिलाकर पकाने के बाद जब दूध मात्र शेष रह जाय तो उतारकर छानकर इसका सेवन करना चाहिये ॥ १७ ॥

रक्तातीसारनाशका योगा —

त्वचो रसालार्जुनसल्लकीनां प्रियालजम्बूबदरीद्रुमाणाम् ।
पृथक्पृथङ्माक्षिकदुग्धयुक्ता रक्तापहाः स्युर्द्विजराजकन्ये ॥१८॥

व्याख्या—हे द्विजराजकन्ये ! द्विजराज चन्द्र, यथाह अमर "द्विजराज शशधर ।" तस्य कन्ये पुत्रि तदाकारत्वात्तादृशसौन्दर्ययुक्ते रत्नकले, (न चेय चन्द्रसुता अपि तु सौन्दर्यादिगुणभूयिष्ठत्वादस्या चन्द्रसुतात्वारोप)। रसाल सहकार अर्जुन ककुभः सल्लकी गजभक्ष्या प्रियाल राजादन जम्बू जाम्बवतरु बदरी कर्कन्धु एतेषामौषधवृक्षाणा त्वच माक्षिक क्षौद्र दुग्ध छागपय आभ्या सह पृथक् पृथक् प्रयुक्ता• सत्य रक्तापहा स्यु रक्तातिसार जयेयु । ग्रन्थकर्त्रा एकस्मिन्नेवास्मिन् पद्ये षड्योगा• वर्णिता । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—हे चन्द्रमा के सदृश सुरूपरत्नकले ! आम, अर्जुन, सलई, चिरौंजी, जामुन अथवा बेर की छाल का चूर्ण मधु एवं बकरी के दूध के साथ सेवन करने से रक्तातीसार का शमन होता है ।

विशेष—उक्त एक ही पद्य में छ योगों का वर्णन है किन्तु अनुपान सबका एक ही है ॥ १८ ॥

आमशूलादौ सगुडबिल्वप्रयोग —

आमशूलविबन्धास्त्र-स्रुतिकुक्षिगदापहम् ।
सेवितं सगुडं बिल्वं बिल्वतुल्यपयोधरे ॥ १९ ॥

व्याख्या—हे बिल्वतुल्यपयोधरे ! बिल्वेन श्रीफलेन तुल्यौ समानाकारौ दृढौ पयोधरौ स्तनौ यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, सगुड बिल्व गुडेन सहितम् आमबिल्वचूर्ण सेवित सत्, आमशूलम्-तल्लक्षण यथा—

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः ।
कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भव शूलमुदाहरन्ति ॥

विबन्ध मूत्रादिरोधम अस्रस्रुति रक्तातिसार कुक्षिगदापह जठररोगनाशक च भवतीति ।
चक्रपाणिरपि— गुडेन खादयेद् बिल्व रक्तातिसारनाशनम् ।
आमशूलविबन्धघ्न कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—हे बेल के सदृशस्तनों वाली प्रिये ! कच्चे बेल की गिरी को सुखाकर बनाये हुए चूर्ण का गुड़ के साथ सेवन करने से आमशूल कोष्ठ-बद्धता, मूत्रादि अवरोध, रक्तातिसार तथा अन्य उदर रोग भी शान्त होते हैं। अनुष्टुप् छन्दः।

विशेष—इसके स्थान पर आजकल चिकित्सक "बेल का मुरब्बा" खाने की सलाह देते हैं। यह उक्त योग का संशोधित रूप है। किन्तु चीनी की अपेक्षा गुड़ का प्रयोग अधिक लाभदायक होता है ॥ १९ ॥

जीर्णरक्तातिसारे दाडिमादिकषाय —

सखि दाडिमवत्सकत्वचा-जनितक्षौद्रयुतः कषायकः ।
शमयेदचिरादतीसृतिं रुधिरोत्थां सुतरां दुरत्ययाम् ॥ २० ॥

व्याख्या—सखीति स्वकलाम्प्रति सम्बोधनम् यथाह चाणक्य 'भार्या मित्र गृहेषु च' दाडिम दन्तबीज वत्सक कुटज एतयो त्वग्जनित निष्पादित कषायक कषाय एव कषायक (स्वार्थे कप्रत्यय) क्षौद्रयुत मधुना सहित दुरत्यया दु खेन कष्टेन अत्यय विनाशो यस्या सा ता रुधिरोत्था रक्तजनिताम् अतीसृतिम् अतिसारम् अचिरात् त्वरित सुतरा सम्यकप्रकारेण शमयेत् । यथाह चक्रपाणि —
कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात् । सद्यो जयेदतीसार सरक्त दुर्निवारकम् ॥ चक्रदत्ते
एष योग भैषज्यरत्नावल्यामपि तथैव सुलभ ।

हिन्दी—लोलिम्बराज अपनी स्त्री से कह रहे हैं, हे सखी ! अनार और कुरैया की छाल का क्वाथ मधु मिलाकर पीने से कठिन-कष्टसाध्य तथा पुराना रक्तातिसार भलीभाति शान्त हो जाता है। वियोगिनीवृत्तम् ।

विशेष—एक 'कुटजरसक्रिया' नाम से प्रसिद्ध योग है, जिसमें कुरैया की छाल

का स्वरस तथा अनार का रस निकालकर दोनों का अवलेह बनाया जाता है। इसका १ तोला की मात्रा में सेवन करने से मृत्यु के मुख में गया हुआ भी रोगी बच जाता है। उक्त योग में भी पदार्थ वही हैं, केवल निर्माण का भेद है।

सुपक्व अनार का छिलका ही औषधि के उपयोग में लाना चाहिये। और यह नियम तो सभी काष्ठौषधियों के लिये सामान्यरूपेण लागू होता है कि एक वर्ष के बाद सभी काष्ठौषधियां हीनवीर्य हो जाती हैं। वास्तव में यहाँ एक वर्ष का तात्पर्य यह है कि ओषधिसग्रह के बाद जब वर्षा ऋतु आती है तो ओषधियां बरसाती हवा के कारण खराब हो जाती हैं। अत. ऐसी ओषधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

रक्तातिसारे शतावर्यादिकल्क —

रक्तातिसारं शमयेत् कल्को वर्याः पयोऽन्वितः।
पयः पानं विधातुर्नुस्तया वा साधितं घृतम् ॥ २१ ॥

व्याख्या—वर्या शतावर्या पयोऽन्वित पय दुग्ध तेन अन्वितो मिलित कल्क (चटनी) पय पान विधातु दुग्धपान कर्तु नु मानवस्य रक्तातिसार शमयेत् दुग्धान्वित शतावरीकल्क यद्वा शतावरीघृत रक्तातिसारी सेवेतेत्याशय ।

यथाह वाग्भट — रक्त विट्सहित पूर्व पश्चाद् वा योऽतिसार्यते।
शतावरीघृत तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ अ० हृ० चि० ९ ॥

चक्रपाणिरपि— पीत्वा शतावरी कल्क पयसा क्षीरभुग् जयेत्।
रक्तातिसारी पीत्वा वा तया सिद्ध घृत नर ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—दूध मात्र का सेवन करनेवाला रक्तातिसार का रोगी यदि शतावरी के कल्क का (१ तोला से २ तोला तक की मात्रा में) सेवन करे तो उसके रोग का शमन हो जाता है। अथवा शतावरी के कल्क से (घृतनिर्माण विधि देखें) बनाये हुए घी का सेवन करें। यह भी लाभदायक होता है। अनुष्टुप् छन्द ॥२१॥

धातक्यादि क्वाथः—

धातकी विश्वमूलञ्च वत्सकत्वक्समन्वितम्।
रक्तातीसारशमनं क्वाथं मधुयुतं प्रिये ॥ २२ ॥

व्याख्या—हे प्रिये! धातकी मदाकुसुम विश्वमूल शुण्ठी वत्सकत्वक् आटरूषकत्वक् च त्रिभिरेभिर्द्रव्यै समन्वितम् मधुयुत क्षौद्रमिलित क्वाथ रक्तातीसारशमन भवति। अनुष्टुपछन्द.।

हिन्दी—हे प्रिये! धाय का फूल सोंठ और अडूसा की छाल का क्वाथ शहद मिलाकर सेवन करने से खूनी अतिसार शान्त हो जाता है ॥ २२ ॥

बालातिसारे धातक्यादिकषाय —

समदाकुसुमं सबिल्वलोध्रं सजलं नागकणाकृतः कषायः ।
मधुना परियोजितो निहन्यादतिसारं सकलं स्तनन्धयानाम् ॥ २३ ॥

व्याख्या—समदाकुसुम धातकीपुष्पेण सहित सबिल्वलोध्र श्रीफललोध्रयुक्त सजल नेत्रवालामिश्रित नागकणाकृत नागकणया कृत कषाय क्वाथ मधुना परियोजित-मधुमिश्रित सन् स्तनन्धयाना क्षीरादबालकानां सकल सर्वविधमतिसार निहन्यात् । एष योगोऽविकलरूपेण शार्ङ्गधरसंहितायाम् दृश्यते—

तद्यथा— धातकीबिल्वलोध्राणि बालक गजपिप्पली ।
एभि कृत श्वृत शीत शिशुभ्य क्षौद्रसंयुतम् ॥
प्रदद्यादवलेह वा सर्वातीसारशान्तये ॥

भैषज्यरत्नावल्यामपि— धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयववालकै ।
लेह क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारशान्तिजित् ॥

हिन्दी—धाय का फूल, कच्चे बेल की गुद्दी, लोध, नेत्रवाला और गजपीपल इनके क्वाथ में मधु मिलाकर देने से दुधमुहे बच्चों के सभी प्रकार के अतिसार शान्त हो जाते हैं । मालभारिणीवृत्तम् ।

विशेष—भैषज्यरत्नावली के उक्त योग में गजपीपल के स्थान पर इन्द्रजव परिवर्तित तथा धनियां परिवर्धित द्रव्य है । यह चिकित्सक अथवा ग्रन्थकर्ता के अनुभव की विशेष सूझमात्र है ॥ २३ ॥

बालरोगेषु कृष्णादिचूर्णम्—

कृष्णारुणामुस्तकशृङ्गिकाणां चूर्णेन पूर्णेन च माक्षिकेण ।
ज्वरातिसारः प्रशमं प्रयाति सश्वासकासः सवमिः शिशूनाम् ॥ २४ ॥

व्याख्या—कृष्णा पिप्पली अरुणा अतिविषा मुस्तक मुस्ता शृंगी कर्कटशृङ्गी समाशिकेनैतेषा चूर्णेन क्षोदेन तथा च माक्षिक मधु तेन मिश्रितेन शिशूना बालाना ज्वर अतिसार श्वास कास वमि च प्रशम प्रयाति शान्ति प्राप्नोति ।

यथा भावमिश्र — घनकृष्णारुणाशृंगीचूर्ण क्षौद्रेण संयुतम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्न कास श्वास वमिं हरेत् ॥

केचन आचार्या अत्र अरुणापदेन मञ्जिष्ठामपि प्रयुञ्जन्ते न तद् युक्तम् । मञ्जिष्ठा केवल रक्तातिसारघ्नी, अतिविषा तु— विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् ।
जीर्णज्वरातिसारामविषकासवमिक्रिमीन् ॥

एष योग ग्रन्थान्तरेषु 'चतुर्भद्र' इति नाम्ना प्रसिद्ध , सर्वत्र बालरोगेषु पूजितश्च ।

चूर्णनिर्माणविधि — अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।
तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता ॥

विशेष—इसको 'चातुर्भद्रचूर्ण' भी कहते हैं। यद्यपि चूर्णों की १ तोला पूर्ण मात्रा लिखी गई है किन्तु सभी चूर्णों की सभी स्थिति में यह मात्रा मान्य नहीं होती। इसके लिये औषध द्रव्यों तथा रोगी के बलाबल का विचार करके ही मात्रा का निर्वाचन करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। उपजातिवृत्तम् ॥ २४ ॥

असाध्यातिसारे गोविन्दनामस्मरणम्—

तृट्श्वासकासज्वरशोफमूर्च्छाहिक्कासुखारोचकवान्तिशूलैः ।
खिन्नोऽतिसारी स्मरतु प्रयत्नात् गोविन्ददामोदरमाधवेति ॥ २५ ॥

व्याख्या—तृट् तृषा श्वासः कासः ज्वरः शोफः शोथः मूर्च्छा हिक्का मुखारोचकः अन्नविद्वेषः वान्तिः वमनं शूलः दशभिरेभिरुपद्रवैः खिन्नः प्रपीडितः अतिसारी अतिसाररोगवान् पुरुषः सत्यपि शक्तिह्रासे यतो हि 'मलायत्तं बलं पुंसाम्', प्रयत्नात् कथं कथमपि गोविन्द! दामोदर! माधव! इति भगवन्नामानि स्मरतु जपतु, यस्मात् एतैर्मरणख्यापकलिङ्गैर्युक्तः अतिसारवान् रोगी मुमूर्षुरिति विद्यात्। असाध्यातिसार—लक्षणानि यथाह सुश्रुतः—

तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् । सम्मूर्च्छारतिसम्मोहयुक्तं पक्वलीगुदम् ॥
प्रलापयुक्तं च भिषग् वर्जयेदतिसारिणम् । सु० उ० ४ ॥

अन्यच्च— श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ तत्रैव ३३ ॥

हिन्दी—प्यास, श्वास, कास, ज्वर, सूजन, बेहोशी, हिचकी, अन्न के प्रति अरुचि वमन, शूल इन उपद्रवों से पीडित असाध्य अतिसार का रोगी शक्ति न होने पर भी प्रयत्नपूर्वक गोविन्द दामोदर माधव आदि भगवान् के नामों का उच्चारण करे। इन्द्रवज्रावृत्तम्।

विशेष—भगवान का नाम स्मरण सांसारिक रोगों से मुक्ति पाने का एक सर्वोत्तम आध्यात्मिक साधन है। यही मरने के बाद भी उस प्राणी का साथी बनता है ॥ २५ ॥

इति अतिसार-प्रतीकारः समाप्तः ।

अथ ग्रहणी-प्रतीकारः

दीपनपाचनो योगः—

यवानीनागरोशीरधनिकातिविषाघनैः ।
बालबिल्वद्विपर्णीभिर्दीपनं पाचनं भवेत् ॥ २६ ॥

व्याख्या—यवानी अजमोदिका नागरं शुण्ठी उशीरं नलदः धनिका धान्यकम्

अतिविषा विषा घन नागरमुस्ता वालबिल्वम् आमश्रीफल द्विपर्णी शालपर्णी पृश्निपर्णी च एभि कृत कषाय' शीतकषायो वा दीपन रुचिवर्धक (अग्निवर्धक) पाचन वातादीनां शामक च भवेत् । भैषज्यरत्नावल्यामपि योगोऽयमित्युपलभ्यते—

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरै । तृष्णाशूलातिसारघ्न दीपन पाचन लघु ॥

चक्रपाणिरपि— धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुस्तनागरम् ।
बला द्विपर्णी विल्वञ्च दद्याद् दीपनपाचनम् ॥ चक्रदत्ते ॥

ग्रहण्या निरुक्तिश्चरके—अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता ।
नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता ॥
अपक्व धारयत्यन्न पक्व सृजति चाप्यध ॥ च० चि० १५ ॥

सुश्रुतोप्याह— षष्ठीपित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता ।
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता ॥ सु० उ० ४० ॥

अतिसरणसाम्यात् परम्परानुवन्धित्वाच्चातीसारानन्तर ग्रहणीसम्प्राप्तिमाह सुश्रुत —

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाऽग्नेरहिताशिन । भूय सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥

हिन्दी—अजवायन, सोंठ, खस, धनिया, अतीस, नागरमोथा, कच्चेबेल का गूदा शालपर्णी, पृश्निपर्णी इन दस औषधियों का क्वाथ मन्दाग्नि को प्रदीप्त करके पाचन शक्ति को बढ़ाता है। अनुष्टुपछन्द ।

विशेष—इस योग में 'वालविल्व' पाठ दिया गया है किन्तु इसी लेखक की दूसरी कृति 'वैद्यजीवन' में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'बलाविल्व' पाठ दिया गया है। बला = खिरैटी का एक गुण सग्राहकत्व भी है। अत इस पाठ में 'आ' की मात्रा का प्रमादवश परिवर्तन नहीं समझना चाहिये ॥ २६ ॥

ग्रहण्याम् अमृतादिकषाय —

अमृतातिविषौषधाम्बुवाहैः सदृशैः पाचनदीपनः कषायः ।
परिसेवित आमवर्षिणीनां ग्रहणीनां शमनो मनोहराऽऽस्ये ॥ २७ ॥

व्याख्या—हे मनोहरास्ये ! चारुवदने ! अमृता गुडूची अतिविषा विषा औषध शुण्ठी अम्बुवाह घन सदृशै समानभागिकै कृत कषाय क्वाथ परिसेवित प्रयुक्तश्चेत् आमवर्षिणीना ग्रहणीना आमदोषयुक्तग्रहणीविकाराणा शमन शामको भवतीति ।

यथाह चक्रपाणि — शुण्ठीं समुस्तातिविषा गुडूचीं पिबेज्जलेन क्वथिता समाशाम् ।
मन्दानलत्वे सततामताया आमानुबन्धे ग्रहणीगदे च ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—हे सुन्दरी प्रिये! गिलोय, अतीस, सोंठ, नागरमोथा इन चार ओषधियों को समानभाग लेकर इसका क्वाथ बना लें, इसका सेवन करने से जाठराग्नि प्रदीप्त होता है और खाया हुआ भोजन पचने लगता है, फलत आमदोष युक्त ग्रहणीरोग शान्त हो जाता है। मालभारिणीवृत्तम् ॥ २७ ॥

ग्रहण्या पुनर्नवादिकषाय.—

पुनर्नवावह्लिजवाणपुंखाविश्वाग्निपथ्याचिरविल्वविल्वैः ।
कृतः कषायः शमयेदशेषान् दुर्नामगुल्मग्रहणीविकारान् ॥ २८ ॥

व्याख्या—पुनर्नवा वृश्चीर वह्लिज मरिच वाणपुखा शरपुखा विश्वा शुण्ठी अग्नि चित्रक पथ्या हरीतकी चिरविल्व करञ्ज विल्वम् आमविल्वम् एभि ओषधिभि कृत कषाय अशेषान् निखिलान् दुर्नामा अर्श गुल्म कोष्ठान्तर्गतग्रन्थिविशेष ग्रहणी च एतान विकारान् शमयेत् । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—**पुनर्नवा, कालीमिरच, शरपुखा, सोंठ, चित्रक की छाल, हरीतकी, करञ्ज, वेलगिरी इन ओषधियों से निर्मित कषाय के सेवन से अर्श (ववासीर) गुल्म तथा ग्रहणी रोग शान्त हो जाता है ॥ २८ ॥**

ग्रहण्यादिरोगेषु पाठादिचूर्णम्—

पाठाविषानलदवत्सकवत्सकत्वक्तिक्तामदारसजनागरविल्वचूर्णम् ।
सक्षौद्रतण्डुलजलं ग्रहणीप्रवाहीरक्तप्रवाहगुदरुग्गुदजेषु देयात् ॥२९॥

व्याख्या—पाठा अम्बष्ठा विषा अतिविषा नलदम् उशीर वत्सक इन्द्रयव वत्सकत्वक् कलिङ्गत्वक् तिक्ता कुटकी मदा धातकी रसज रसाञ्जन नागर शुण्ठी विल्वचूर्णम् आमविल्वक्षोदम् एभि दशभि ओषधिभि कृत चूर्ण सक्षौद्र क्षुद्राभिर्मधुमक्षिकाभि निर्मित मधु तेन सहित तण्डुलजल ग्रहण्याम् प्रवाहिकाया रक्तप्रवाहे रक्तातिसारे गुदरुजि गुदजेषु अर्शःसु देयात् । 'नागराद्यचूर्ण'नाम्ना चक्रपाणिनापि चक्रदत्ते योगोऽय समुद्धृत —

नागरातिविषामुस्त धातकीसरसाञ्जनम् । वत्सकत्वक्फल विल्व पाठा कटुकरोहिणीम् ॥
पिवेत्समाश तच्चूर्ण सक्षौद्र तण्डुलाम्बुना । पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्त यश्चोपवेश्यते ॥
अर्शास्यथ गुदे शूल जयेच्चैव प्रवाहिकाम् । नागराद्यमिद चूर्ण कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥

तण्डुलोदकनिर्माणप्रकार —शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना ।
केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुलभावनाम् ॥

हिन्दी—**पाठा, अतीस, खस, कुटज की छाल तथा बीज, कुटकी, धाय के फूल, रसौत, सोंठ, कच्चे बेल का गूदा समान भाग इन दस द्रव्यों का सुखाकर बनाया हुआ चूर्ण मधु के साथ सेवन कर उसके बाद तण्डुलोदक को पीने से ग्रहणी प्रवाहिका, रक्तातिसार, गुदपीडा, अर्श (ववासीर) रोगों का विनाश करता है ।**

विशेष—**तण्डुलोदक निर्माण में कुछ मत भेद है। आचार्य वृन्द का कथन है कि अठगुना गर्म जल में छानकर तण्डुलोदक बनाना चाहिये किन्तु अन्य आचार्यों का मत है कि छ:गुने गर्म पानी में चावलों को भिगोकर छान लेना चाहिये। यह तत्-तत् आचार्यों का अपना अनुभव है। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २९ ॥**

ग्रहण्यादौ तिक्तादिचूर्णम्—

तिक्तातिक्तघनेन्द्रजं त्रिकटुकं पीत्वा समग्रं समं
द्वौ भागौ शिखिनः कलापरिमितान् भागान् कलिङ्गत्वचः।
चूर्णं स्याद् गुडशीततोयसहितं सेव्यं ग्रहण्यां ज्वरे
गुल्मारोचककामलातिसृतिजित् पाण्डूडुसूर्योदयः ॥ ३० ॥

व्याख्या—तिक्ता चिरतिक्त तिक्ता कुटकी घन मुस्ता इन्द्रजम् इन्द्रयव त्रिकटुक त्र्यूषणम् एतेषा समग्र सम समांशिक भाग शिखिन चित्रकस्य द्वौ भागौ कलिङ्गत्वच· कुटजत्वच कलापरिमितान् षोडशभागान् आदाय चूर्णीकृत्य गुडमिश्रितशीतलजलेन सेवितमिद चूर्ण गुल्मम् अरोचक कामलाम् अतिसारञ्च जयति तथा पाण्डूडुसूर्योदय पाण्डुरोगरूपिणीना तारकाणा विनाशाय सूर्योदय इव जागर्ति। शार्दूलविक्रीडितम्। एन योग चक्रपाणि भूनिम्बादिचूर्णनाम्ना विलिलेख स्वकीये चक्रदत्ताभिधे ग्रन्थे।

तद्यथा— भूनिम्बकटुकव्योपमुस्तकेन्द्रयवान् समान्।
द्वौ चित्रकान् वत्सकत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत् ॥
गुडशीताम्बुना पीत ग्रहणीदोषगुल्मनुत्।
कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥
गुटयोगाद् गुडाम्बुस्याद् गुडवर्णरसान्वितम् ॥

हिन्दी—चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, मरिच, पीपल इन द्रव्यों को समानभाग लें, चीता की छाल का चूर्ण दुगुना, और कुटज की छाल का चूर्ण १६ गुना लेकर चूर्ण करके शीतल जल में गुड मिलाकर ज्वर और ग्रहणी रोग में इसका सेवन करें। यह चूर्ण गुल्म, अरोचक, कामला तथा अतिसार का शमन करता है और पाण्डुरोग रूपी तारों को हतप्रभ करने के लिये यह योग सूर्य के समान प्रभावशाली है ॥ ३० ॥

वृहद्दीपनपाचनो योग —

द्विक्षारषट्कटुपटुव्रजहिङ्गुदीप्यैरेभिर्गुडो बदरदाडिमलुंगनीरैः।
श्लेष्मानिलग्रहणिकासु च योजनीयो लोकत्रयैकमतिदीपनपाचनेऽलम् ॥

व्याख्या—द्विक्षारौ सर्जिकायवक्षारौ षट्कटु षडूषणम्—

तद्यथा— पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरै।
मरिचेन युत तत्तु षडूषणमुदाहृतम् ॥

पटुव्रजो लवणपञ्चकम्—सौवर्चल सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च।
सामुद्रेण सम पञ्चलवणान्यत्र योजयेत् ॥

हिङ्गु रामठ दीप्य यवानी एतान् पदार्थान् चूर्णीकृत्य गुड इक्षुविकारः

वदर वारिवदर प्राचीनामलक दाडिम दन्तवीज लुङ्ग मातुलुङ्गम् एतेषा नीरै रसै भावयेत्। एतच्चूर्ण श्लेष्मानिलग्रहणिकासु च श्लेष्मग्रहण्या वातजग्रहण्यां वा किं वा द्वन्द्वजग्रहण्या योजनीय प्रयोज्यम्। यस्माद् इद लोकत्रयैव, त्रिलोक्या श्रेष्ठम् अग्निदीपन-पाचने अतिशयदीपनकार्ये पाचनकार्य च अल समर्थम्। वसन्ततिलकावृत्तम्।

तदेव चक्रपाणि. चक्रदत्ते—चित्रक पिप्पलीमूल द्वौ क्षारौ लवणानि च।
व्योपहिङ्ग्वजमोदाश्च चव्यश्चैकत्र चूर्णयेत्॥
गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमाम्लरसेन वा।
कृता विपाचयत्याम दीपयत्याशु चालनम्॥

वाग्भटोप्याह— पटूनि पञ्च द्वौ क्षारौ मरिच पञ्चकोलकम्।
दीप्यक हिङ्गु गुटिका बीजपूररसे कृता॥
कोलदाडिमतोये वा पर दीपनपाचनी॥ वा० नि० १०॥

हिन्दी—सज्जीखार, जवाखार, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमरिच, पाचों नमक (कालानमक, सैन्धानमक, विरियानमक, रेहनमक, साम्हरनमक) हीग, अजवायन इनको कूट पीसकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण में गुड, पानी, आंवला, दाडिम-और विजौरा नीबू के रसों की भावना देकर सुखाकर रखलें। यह चूर्ण, कफज, वातज तथा द्वन्द्वज ग्रहणीविकार में लाभदायक है, उत्तम दीपन-पाचन होने के कारण यह तीनों लोकों में श्रेष्ठ है॥ ३१॥

ग्रहणीरोगे क्षुद्विवर्धनो योग—

क्षारयुगत्रिकटुत्रिपटूनि मिशिचविकारजनीजरणानि।
रामठदीप्यहुताशयुतानि प्रेयसि मर्दय लुङ्गजलेन॥ ३२॥
तक्रयुतं बदराम्बुयुतं वा कोष्णजलेन युतं तुपकैर्वा।
गुल्मगुदाङ्कुरजिद् ग्रहणीपु श्रेष्ठमिदं क्षुधमाशु करोति॥ ३३॥
युग्मकम्॥

व्याख्या—क्षारयुग सर्जिका यवक्षार च त्रिकटु त्र्यूपण त्रिपटूनि विट्रुचकसैन्धवानि मिशि शतपुष्पा चविका चव्य रजनी हरिद्रा रामठ हिङ्गु दीप्यम् अजमोदा हुताश चित्रक एभिर्द्रव्यैर्युतानि निर्मितानि चूर्णानि जरणानि पाचनानि भवन्ति अत हे प्रेयसि प्रियतमे एतानि द्रव्याणि लुङ्गजलेन मातुलुङ्गरसेन मर्दय एतच्चूर्ण तक्रयुतम् उदश्वित् सहित वदराम्बुयुत वा स्वल्पकर्कन्धुरसेन युत वा कोष्णजलेन मन्दोष्णवारिणा सह वा तुपकै तुपोदकै वा सेवित सत् गुल्मगुदाङ्कुरजिद् गुल्मम् अर्शांसि विनाशयति, क्षुधामाशु करोति बुभुक्षा च वर्धयति। उपजातिवृत्तम्। दोधकवृत्तम्।

हिन्दी—हे प्रियतमा! सज्जीखार, जवाखार, सोंठ, मरिच, पीपल, तीनों नमक (विड् रुचक, सैन्धव) सौंफ, चव्य, हल्दी, हींग, अजवायन, चीता की छाल इन

अग्निवर्धक पदार्थों के चूर्ण को विजौरा नीबू के रस में घोटिये। इस चूर्ण का मठा से या अदरख के रस से या गुनगुने पानी से अथवा तुपोदक के साथ सेवन करने से गुल्मरोग अर्श (ववासीर) ग्रहणी रोग का शमन होता है और इसके सेवन से शीघ्र भूख बढ़ती है।

विशेष—तुपोदक निर्माण प्रकार—तुप सहित कच्चे जौ के टुकडे करके सन्धान की रीति से पानी में भिगो दें। खट्टापन आने के बाद छानकर प्रयोग में लें॥ ३०-३३॥

ग्रहणीरोगे चव्यकादिचूर्णम्—

चव्यकं चित्रकं विश्वं बालबिल्वं सुचूर्णितम्।
तक्रेण सहितं हन्ति ग्रहणीं दुःखकारिणीम्॥ ३४॥

व्याख्या—चव्यक चव्य चित्रक वह्नि विश्व शुण्ठी बालबिल्वम् आमश्रीफल प्रत्येक पदार्थ सुचूर्णीकृत श्लक्ष्ण सचूर्ण्य तक्रेण दण्डाहतेन सहित सेवित सत् दु खकारिणीं क्लेशदायिनीं ग्रहणीं हन्ति विनाशयतीत्यर्थ । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—चव्य, चीता, की छाल, सोंठ, कच्चे बेल की गुद्दी इन सबका चूर्ण बनाकर मठा के साथ सेवन करने से दु खद ग्रहणी रोग की शान्ति होती है॥३४॥

ग्रहणीरोगे सौवर्चलादिचूर्णम्—

रुचकाग्निमरीचाना चूर्णं तक्रेण शस्यते।
ग्रहण्युदरगुल्मार्शोमन्दाग्निप्लीहनाशनम्॥ ३५॥

व्याख्या—रुचक सौवर्चलम् अग्नि चित्रक मरिच कृष्णा एषा त्रयाणा वस्त्रगालित चूर्ण तक्रेण सह सेवित सद् ग्रहणीम् उदरम् उदररोग गुल्म कोष्टान्तर्गत ग्रन्थिम अर्श दुर्नाम मन्दाग्नि क्षुन्मान्द्य प्लीहानञ्च विनाशयति। अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—कालानमक, चीता की छाल, कालीमिरच, इन तीनों का चूर्ण मठा के साथ सेवन करने से ग्रहणी, उदररोग, अर्श मन्दाग्नि तथा प्लीहा (तापतिल्ली) इन रोगों की शान्ति होती है॥ ३५॥

ग्रहण्या शुष्कपुरीषप्रतीकार —

कृच्छ्रेण कठिनत्वेन य पुरीषं विमुञ्चति।
सघृतं लवणं तस्य पाययेत् क्लेशशान्तये॥ ३६॥

व्याख्या—य ग्रहणीरोगार्दित कठिनत्वेन वातसंसृष्टत्वाद् बद्धेन मलेन कृच्छ्रेण सकष्टेन पुरीष मल विमुञ्चति निस्सारयति तस्य रोगिण क्लेशशान्तये तज्जन्यकष्टनिराकरणाय सघृत लवण सर्पिषा सहित सैन्धव पाययेत् अत्र निदानोक्तस्य 'मुहुर्बद्ध' इति लक्षणस्य निराकरणाय ग्रन्थकारस्याय योग । चरकेऽपि—

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता । नाभेरुपरि सा ह्यग्निवलोपस्तम्भवृद्दिता ॥
अपक्व धारयत्यन्न पक्व सृजति वाऽन्यथः ॥ च० चि० १५ ॥

हिन्दी—वायु की अधिकता से मल के सूख जाने के कारण यदि उसके निकलने में कष्ट हो रहा हो तो रोगी को घी और सेंधानमक का सेवन कराना चाहिये ।

विशेष—यह ग्रन्थकर्ता की अपनी नई सूझ है। नमक और घी दोनों ही पाचनकर्ता तथा तीनों दोषों के शामक हैं। यह नई सूझ भी शास्त्र-सम्मत होने के कारण विद्वानों द्वारा आदृत है। अनुष्टुप्छन्द' ॥ ३६ ॥

ग्रहण्या सर्पि प्रयोग —

वातानुलोमनं सर्पिः शुण्ठीकल्केन साधितम् ।
कासश्वासज्वरप्लीहाग्रहणीपाण्डुगञ्जनम् ॥ ३७ ॥

व्याख्या—शुण्ठीकल्केन साधित शुण्ठी महौषध तस्या कल्केन साधित पाचित सर्पि घृत वातानुलोमन तथा कास-श्वास-ज्वर-प्लीहा ग्रहणी पाण्डुरोगाणा गञ्जन विनाशक भवतीत्यर्थ । चक्रपाणिरपि—

घृत नागरकल्केन सिद्ध वातानुलोमनम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्न प्लीहकासज्वरापहम् ॥ चक्रदत्ते ।

घृतपाकविधि — दुग्धे दध्नि रसे तक्रेकल्को देयोऽष्टमाशक' ।
कल्कस्य सम्यक् पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥

घृतपाके व्युषितनिषेधो यथाह वृन्द —व्रीहिप्राण्यङ्गयो क्वाथो व्युषितो दोषलो मत ।

हिन्दी—सोंठ के कल्क से बनाया गया घी वायु का अनुलोमन करता है और खांसी, श्वास, ज्वर, प्लीहा, ग्रहणी, पाण्डुरोग का विनाश करता है। अनुष्टुप्छन्द ।

विशेष—घृत निर्माणविधि-घी १ सेर, सोंठ १ पाव, जल ४ सेर लेना चाहिये। आचार्य वृन्द के कथनानुसार घी का पाक एक ही दिन में कर लेना चाहिये ॥३७॥

ग्रहण्या छागपय प्रयोग —

आजं पयो मोचरसाम्बुवाह-ह्रीवेरबिल्वेन्द्रजकल्कसिद्धम् ।
दिनत्रयाद्धन्ति निपीतमुग्रामामानुबन्धां ग्रहणीं सरक्ताम् ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मोचरस शाल्मलीवेष्ट' अम्बुवाहो मुस्तक ह्रीवेर वालक विल्व श्रीफलम् इन्द्रजम् इन्द्रबीजम् एतदौषधाना कल्केन साधितम् आजम्पय छागदुग्ध निपीत सेवित सत उग्रा भीषणाम् आमानुबन्धाम् आमदोषसयुक्तां सरक्ता रक्तयुक्ता (पित्तप्रकोपे मलस्य सरक्तत्व दृश्यते) यथाह जेज्जट —'दोषलिङ्गेन मतिमान् ससर्ग तत्र लक्षयेत्' ग्रहणीं

रोगविशेष दिनत्रयात् त्रिषु दिवसेष्वेव हन्ति विनाशयति। उपजातिवृत्तम्। भेषजसिद्धस्य छागदुग्धस्य महिमा—

जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतिसारे विशेषतः। छागं तद् भेषजैः सिद्धं पेयं वा वारि साधितम्॥

ग्रहण्याश्चिकित्सानुक्रम्— ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्।
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत्॥

हिन्दी—मोचरस, नागरमोथा, नेत्रबाला, बेल की गिरी, कुटज के बीज इनके कल्क द्वारा पकाये गये बकरी के दूध के तीन दिन के सेवन करने से भयंकर आम और रक्त मिश्रित ग्रहणी-विकार का शमन हो जाता है॥ ३८॥

इति श्रीमल्लोलिम्बराजविरचिते चमत्कारचिन्तामणौ
ग्रहणीप्रतीकारो नाम द्वितीयो विलासः समाप्तः।



अथ तृतीयो विलासः

अथ सवादात्मिका प्रस्तावनामाह—

कोमले निर्मले मञ्जुले प्रोज्ज्वले वत्सले चञ्चले वल्लभे श्रूयताम्।
यत्त्वया पृच्छ्यते तन्मया कथ्यते त्वन्तु मां प्रेक्षसेऽद्यापि किंवक्रदृक्॥

व्याख्या—कोमले मृदुले निर्मले शुद्धहृदये मञ्जुले सौम्यस्वभाववति प्रोज्ज्वले दीप्यमानवक्त्राम्भोजे वत्सले प्रिये चञ्चले चपले वल्लभे सुस्निग्धे श्रूयताम्, यत्त्वया पृच्छ्यते यद् भवती पृच्छति तन्मया कथ्यते तत् सर्वमहं कथयन्नस्मि त्वन्तु मा भवती तु त्वदाज्ञा-परिपालक त्वद्गुणानुरक्त वा माम् अद्यापि आज्ञापरिपालनमन्तरापि किं कथ वक्रदृक् क्रूरदृष्ट्या प्रेक्षसे विलोकयसि। कवि पद्येनानेन इद भङ्ग्या निरूपयति यद एष चमत्कारि-चिन्तामणिनामकश्चिकित्साग्रन्थो मया वार्तालापप्रसङ्गे एव रचित न चात्र पृथक् परिश्रमं कृत।

अत्र वार्तालापप्रसङ्गे प्रत्युत्पन्नमति लोम्बिराज स्वप्रियाया प्रश्नान् उत्तरयन् मनागपि नाक्लिश्यत् किन्तु सुकुमारतया परिश्रान्ता रत्नकला उत्तरप्रदानाद् अविरमन्त स्वस्वामिन प्रति वक्रदृष्ट्या प्रेक्षत इति अनुमीयते अनेन कवेरस्य 'यद्-भक्तेन मया घटस्तनि घटीमध्ये समुत्पाद्यते पद्याना शतकम्' इति वैद्यजीवनोक्ता गर्वोक्ति स्वभावोक्तिरेवावगम्यते। स्रग्विणीवृत्तम्।

हिन्दी—कोमल निर्मल मञ्जुल उज्ज्वल प्रिय तथा चञ्चल प्राणप्रिये! सुनो, जो तुम पूछती हो उसका मैं (लोलिम्बराज) उत्तर देता जा रहा हूँ—फिर भी तुम मुझे (न मालूम) क्यों टेढ़ी नजर से देख रही हो।

विशेष—इस पद्य के द्वारा ग्रन्थकर्ता ने यह व्यक्त किया है कि यह ग्रन्थ हम दोनों (पति-पत्नियों) का सम्भाषण मात्र है। दूसरी ओर अपनी प्रियतमा की सुकुमारता के कारण थक जाना और अपना निरन्तर कविता का प्रदर्शन ये दोनों ध्वनियां 'यत्त्वया पृच्छ्यते तन्मया कथ्यते त्वन्तु मा प्रेक्षसेऽद्यापि किं वक्रदृक्' से प्रतिध्वनित हो रही हैं॥ १॥

विजयादिगुटिका—

विजयानागरमुस्तागुडकृतगुटिका धृता वक्त्रे।
शमयति कासं श्वासं हिममिव वक्षोधृता वनिता॥ २॥

व्याख्या—विजया भगा नागरमुस्ता मुस्तक गुडकृता गुडेन रचिता, अर्थात् विजया-मुस्तकयोश्चूर्णं गुडेन सम्मेल्य निर्मिता गुटिका वटी वक्त्रे मुखे धृता सती कास श्वास च

तथा शमयति निवारयति यथा वक्षोधृना वक्षसाऽऽलिङ्गिता वनिता प्रियतमा हिम शीतबाधा परिहरति । आर्यावृत्तम् ।

हिन्दी—भाग की पत्ती, नागरमोथा इनके चूर्ण की गुड मिलाकर गोली बना लें। इस गोली को चूसते रहने से कास और श्वास रोग उस प्रकार शान्त हो जाते हैं जिस प्रकार अपनी प्रियतमा को छाती से लगा लेने पर जाडा ॥ २ ॥

चिन्तामणियोग —

रास्नाबलापद्मकदेवदारुफलत्रिकं त्र्यूपणविष्णुचूर्णम् ।
चिन्तामणि· क्षौद्रघृतोपपन्न· श्वासांश्च कासांश्च निराकरोति ॥३॥

व्याख्या—रास्ना भुजङ्गाक्षी (रास्नाया चिन्तामणिवद् गुणा अतएवेय रास्नादिगुटिका चिन्तामणिनाम्ना प्रथिता) बला वाट्यालक पद्मक पद्मकाष्ठ देवदारु सुरदारु फलत्रिक त्रिफला त्र्यूपण त्रिकटु विष्णुचूर्ण विडङ्गक्षोदम् एतान् सर्वान् चूर्णीकृत्य एकत्र स्थापयेत् विपमाशभागेन क्षौद्रघृतोपपन्न एप योगश्चिन्तामणिसज्ञक अय श्वासान् कासाश्च निराकरोति, इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—रास्ना, बला, पद्माख, देवदारु, हरड, बहेडा, आंवला, सोंठ, मरिच, पीपल, वायविडग इन सब का समानभाग चूर्ण लेकर रख लें। इस चूर्ण को घी और मधु के साथ सेवन करने से श्वास-कास का शमन होता है।

विशेष—इस योग का वास्तविक नाम 'रास्नादिगुटिका' है। किन्तु रास्ना के गुणों से मुग्ध होकर ग्रन्थकार ने इसका नाम 'चिन्तामणिवटी' रखा है। इसमें घृत-मधु का अनुपान लिखा है। इनको विषम मात्रा में मिलना चाहिये ॥ ३ ॥

श्वासे वासादिक्वाथ —

वासाहरिद्राधनिकागुडूची भार्ङ्गी यथा नागररिंगणीनाम् ।
क्वाथेन तीक्ष्णेन समन्वितेन श्वासः शमं याति न कस्य पुंस· ॥४॥

व्याख्या—वासा-आटरूपक हरिद्रा निशा धनिका धान्यक गुडूची अमृता भार्ङ्गी ब्राह्मणयष्टिका नागर शुण्ठी रिंगणी कण्टकारी एतेषा तीक्ष्णेन मरिचेन समन्वितेन सहितेन क्वाथेन कस्य पुम पुरुषस्य श्वास शम शान्ति न याति अपितु सर्वस्यापि शम यातीत्यर्थ । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—अडूसा, हल्दी, धनिया, गियोय, भारगी, सोंठ, कालीमिर्च कण्टकारी इनका क्वाथ बनाकर सेवन करने से सभी का श्वास रोग शान्त हो जाता है।

विशेष—यद्यपि आयुर्वेदिक कोपकारों ने रिङ्गिणी शब्द का अर्थ लिखते हुए 'मुद्गपर्णीलतायाम, कैवर्तमुस्तायाम्, कण्टकार्याञ्च' लिखकर अनेक अर्थों में इसका प्रयोग किया है किन्तु मराठी भापा में केवल कण्टकारी को ही रिंगणी कहते हैं।

इससे अनुमान किया जाता है कि इस महाराष्ट्रनिवासी कविने कविता-प्रवाह में आकर आत्मविभोर हो कण्टकारी के लिये अपनी मातृभाषा में प्रयुक्त रिंगणी शब्द का प्रयोग किया हो। अन्यथा वह इसके अन्य संस्कृत नामों का प्रयोग करता ॥४॥

लवङ्गादिवटी—

समलवंगमरीचविभीतकैः खदिरसारसमैरवलोडितैः।
क्वथितवब्बुलिकासलिलैर्वटी मुखधृता कसनं श्वसनं जयेत् ॥५॥

व्याख्या—लवग देवकुसुम मरिच वेल्लज विभीतकम् अक्षफलम् एते त्रय पदार्था समभागयुक्ता सर्वे सम खदिरसार दन्तधावननिर्यास वब्बुलिकासलिलै वब्बूलक्वाथै क्वथिना पाचिता वटी गुटिका मुखधृता वदनमध्ये धृता सती कसन कास, श्वसन श्वास च जयेत्। आर्यावृत्तम्।

हिन्दी—लवंग, कालीमिर्च, वहेड़ा इन तीनों का चूर्ण समानभाग और इन तीनों के समान खदिरसार (कत्था) मिलाकर ववूल के क्वाथ की भावना देकर गोली बनाकर रख लें। इस गोली को चूसने से श्वास कास का शमन होता है ॥५॥

कासरोगे वासकक्वाथ —

पुलोमजावल्लभसूनुपत्नीतातात्मभूशेखरकेतनस्य।
सौन्दर्यदूरीकृतरामरामे कषायकः काससमीरसर्पः ॥ ६ ॥

व्याख्या—सौन्दर्यदूरीकृतरामरामे सौन्दर्येण शरीरलावण्येन दूरीकृता न्यक्कृता रामरामा सीता यया सा तत्सम्बुद्धौ, पुलोमजा शची तस्या वल्लभो देवराज इन्द्र तस्य सूनु अनुज, 'सूनु पुत्रेऽनुजे रवौ', इति विश्व। उपेन्द्र श्रीकृष्ण त स्य पत्नी लक्ष्मी तस्या तात समुद्र तस्यात्मभू पुत्र चन्द्र स शेखरे यस्य स शिव तस्य केतन वाहन वृष वासक, यथाह भेदिनीकोशकार।

वृषो धर्मे वलीवर्दे शृंग्या पुराशिभेदयो। श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थश्च वासमूषिकशुक्रले ॥

तस्य कषायक क्वाथ काससमीरसर्प कास एव समीर तस्य विनाशाय सर्प पवनाशन एव विद्यते। अत्र काससमीरसर्प, इति रूपकालङ्कार। पक्षान्तरे पुलोमजा देवेन्द्रपत्नी तस्या वल्लभ स्वामी इन्द्र तस्य सूनु पुत्र अर्जुन तस्य पत्नी द्रौपदी तस्या तात पिता द्रुपदः तस्यात्मभू पुत्र शिखण्डी शिखण्डश्चूडाऽस्यास्तीति सर्प फटावान् स एव शेखरे यस्य स शिव तस्य केतन वाहन वृष सिंहास्य शेषपूर्ववत्। उपजातिवृत्तम्।

हिन्दी—अपने सौन्दर्य से सीता के सौन्दर्य को भी तिरस्कृत करनेवाली प्रियतमा! अड्डूसा का क्वाथ कासरूपी वायु का विनाश करने के लिये साक्षात् साप है। अर्थात् मधु मिश्रित अड्डूसा का क्वाथ (वातज) कास का शमन करता है ॥६॥

कासे पिप्पल्यादिचूर्णम्—

पिप्पलीपिप्पलीमूलविभीतकमहौषधैः ।
मधुना सेवितैः कासः प्रशाम्यति कुतूहलात् ॥ ७ ॥

व्याख्या—पिप्पली कृष्णा पिप्पलीमूल ग्रन्थिक विभीतक अक्ष महौषध शुण्ठी समभागयुक्तैरेतैः मधुना सेवितैः चूर्णैः कास कुतूहलात् सरलतया प्रशाम्यति शमं यातीत्यर्थः । अनुष्टुप्छन्दः ।

हिन्दी—पिप्पली, पिप्पलीमूल, बहेड़ा, सोंठ इन सबको समानभाग लेकर चूर्ण कर लें। इसको मधु के साथ सेवन करने से आसानी से खाँसी दूर हो जाती है।

कासरोगे त्रिफलादिचूर्णम्—

फलत्रयच्छिन्नरुहाद्रुनागरास्नाक्रिमिध्वंसिकटुत्रयाणाम् ।
चूर्णं समांशं सितया समेतं कासं जयेन्नात्र विचारणीयम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—फलत्रयच्छिन्नरुहाद्रुतागरास्नाक्रिमिध्वंसिकटुत्रयाणाम् पथ्याधात्रीविभीतकगुडूचीचित्रकसुवहाजन्तुघ्नशुण्ठीमरिचपिप्पलीनां समांशं समभागं चूर्णं क्षोदं सितया इक्षुविकारेण समेतं कासं जयेद् विनाशयेद् । अत्र न विचारणीयं सन्देहो नैव कर्तव्य 'समांशम्' इत्यस्य स्थाने तत्रैव 'सम स' इत्यपि पाठोऽस्ति । उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—हरड़, बहेड़ा, आँवला, गिलोय, चीता की छाल, रास्ना वायविडंग, सोंठ, मरिच, पीपल इन सबको समभाग लेकर चूर्ण कर लें और चूर्ण के बराबर उसमें मिश्री मिला दें। इसके सेवन से कास का शमन होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

कासे त्रिकटुचूर्णम्—

संयुतं गुडसर्पिर्भ्यां चूर्णं त्रिकटुसम्भवम् ।
निहन्ति तरसा कासांस्त्रासानिव सतां हरिः ॥ ९ ॥

व्याख्या—त्रिकटुसम्भवं शुण्ठीमरिचपिप्पलीकृतं चूर्णं गुडसर्पिर्भ्यां संयुतं मिलितं सत् तरसा हेलया तथा कासान् निहन्ति विनाशयति यथा हरिः भगवान् सतां सज्जनानां त्रासान् हरतीति । अनुष्टुप्छन्दः ।

हिन्दी—सोंठ, मरिच, पीपल का चूर्ण गुड़ और घी के साथ मिलाकर सेवन करने से उस प्रकार कासरोग का सरलता से विनाश करता है, जिस प्रकार भगवान् सज्जनों के कष्टों का ॥ ९ ॥

बालकासे अतिविषाप्रयोग —

मनोहरे मानिनि मञ्जुघोषे शरीरशोभाजितमञ्जुघोषे ।
ज्वरं वमिं कासमपि च्छिनत्ति क्षौद्रेण युक्ताऽतिविषा शिशूनाम् ॥

व्याख्या—मनोहरे चेतोहरे मानिनि स्वाभिमानयुक्ते मञ्जुघोषे मञ्जुलस्वरे शरीरशोभाजितमञ्जुघोषे शरीरशोभया देहकान्त्या जिता न्यक्कृता मञ्जुघोषा स्वर्वेश्या यया सा तत्सम्बुद्धौ, क्षौद्रेण माक्षिकेण युक्ता मिलिता अतिविषा प्रतिविषा शिशूना बालकाना ज्वर वमिं कासमपि च्छिनत्ति दूरीकरोति । उपेन्द्रवज्रा ।

हिन्दी—**हे सुन्दरि ! मधु के साथ अतीस का चूर्ण चटाने से बालकों के ज्वर, वमन (उलटी) तथा कास रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १० ॥**

श्वासकासहरो योग —

शृङ्गवेररसचन्द्रशेखरे माक्षिकालिनिकरेण सुन्दरे ।
श्वासकासयुगमंहसञ्चयं सेविते सति सति प्रणश्यति ॥ ११ ॥

व्याख्या—शृङ्गवेररसचन्द्रशेखरे शृगवेरस्य शुण्ठ्या रस एव चन्द्रशेखर शिव तस्मिन् माक्षिकालिनिकरेण सुन्दरे माक्षिक मधु तदेव अलिनिकर भ्रमरसमूहस्तेन सुन्दरे हे सति ! सच्चरित्रशालिनि । तस्मिन् सेविते सति श्वासकासयुगमहसञ्चय श्वासकासयुगम् एव अह पाप तस्य सञ्चय समूह प्रणश्यति विनष्टो भवति । रथोद्धतावृत्तम् ।

हिन्दी—**हे प्रियतमे ! सोंठ के रस में शहद मिलाकर सेवन करने से श्वास कास का विनाश हो जाता है ।**

विशेष—**सोंठ सूखी होती है अत इसका रस निकाला नहीं जा सकता अतएव इसका हिम अथवा क्वाथ बनाकर प्रयोग करे ॥ ११ ॥**

श्वासकासनाशने योग।—

रे श्वासिनः कासिन औषधानि बहूनि कष्टात् किमिति क्रियन्ते ।
एकं मरीचालिरजो विहाय सितामधुभ्यां मधुराधरोष्ठि ! ॥१२॥

व्याख्या—समीपस्थिता स्वप्रिया मधुराधरोष्ठीतिमम्बुद्धय श्वासिकासिन प्रति योग विशेषकथनमारभते-रे श्वासिन श्वासरोगोऽस्तीति श्वासी तत्सम्बुद्धौ जसि रूपम् रे कासिन कासरोगाभिभूता कष्टात् परिश्रमाधिक्यात्, धनव्ययाद् वा सितामधुभ्या सह सम्प्रयुक्तम् एक केवल मरीचालिरजो विहाय मरीचमेवालि भ्रमर श्यामत्वात् तस्य रज चूर्ण तद् विहाय त्यक्त्वा बहून्यनेकानि औषधानि भेषजोपचारा किमिति कथकार क्रियन्ते यतो हि सर्वाण्युपचाराणि व्यर्थानि क्लेशकराणि वेत्याशय । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—**ग्रन्थकार अपनी पत्नी से वार्तालाप करता हुआ श्वास-कास रोगियों के प्रति कह रहा है—हे श्वास-कास के रोगियो ! मिश्री और मधु मिले हुए कालीमिर्च के चूर्ण का सेवन छोड़कर आप और अनेक ओषधियों के सेवन का व्यर्थ कष्ट क्यों करते हैं । अर्थात् यह आरम्भिक श्वास कास में अत्यन्त लाभकारक योग है ॥ १२ ॥**

रक्तपित्तादौ वासकप्रयोग —

रक्तपित्तकसनक्षयापहं रे द्विजोत्तम भजोत्तमं वृषम् ।
एष धर्म उचितः सुरद्विषां भेषजेऽपि वृषशब्द इष्यते ॥ १३ ॥

व्याख्या—रे द्विजोत्तम ! भो ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उत्तम श्रेष्ठ रक्तपित्तकसनक्षयापह रक्तपित्तकासराजयक्ष्मरोगापहारिणं वृष वासक भज सेवस्व । एष योग कथित । उत्तरार्द्धे तु प्रियम्प्रति भाषमाणाया रत्नकलाया वृषशब्दपरत्वेन परिहासप्रवृत्ति, तत्पक्षे तु रे द्विजोत्तम ! उत्तम पीन वृष वृषभ भज भुङ्क्ष्व । अत एव वक्ति सा एष धर्मं सुरद्विषां राक्षसानाम् उचित किम् अन्यत्र भेषजेऽपि वृषशब्द इष्यते ? अपितु नेष्यत इत्यर्थ· अभिनवनिघण्टौ वासकगुणा —

वासको वातकृत्स्वर्य· कफपित्तास्रनाशक । श्वासकासज्वरच्छर्दिमेहकुष्ठक्षयापह ॥

हिन्दी—हे द्विजराज ! रक्तपित्त कास तथा क्षय का विनाश करने वाले उत्तम गुणयुक्त अडूसा का सेवन कीजिये । निम्नलिखित पंक्ति में वृष शब्द के श्लेषात्मक अर्थ को ध्यान में रखकर परिहासपूर्वक रत्नकला अपने पति से कह रही है— वृष = बैल का सेवन = भक्षण तो राक्षसों के लिये उचित है, क्या ऐसी वस्तु का उपयोग औषधि के लिये करना चाहिये ? । रथोद्धतावृत्तम् ॥ १३ ॥

श्वासरोगे गुडतैलप्रयोग —

कटुतैलेन संयुक्तो गुडो यावन्न सेवितः ।
सप्तरात्रं कथं तावत् श्वासिश्वासो विनश्यति ॥ १४ ॥

व्याख्या—श्वासरोगिणा सप्तरात्र सप्ताह यावत् कटुतैलेन सर्षपतैलेन संयुक्तो मिलितो गुडो न सेवित तावत् कालपर्यन्त श्वासिश्वास श्वासरोगोऽस्यास्तीति श्वासी तस्य श्वासो रोगविशेष कथ केन प्रकारेण विनश्यति । अनुष्टुप्छन्द ।

चक्रपाणिरपि—

गुड कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् । त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वास निर्मूलतो जयेत् ॥

हिन्दी—श्वासरोगी जबतक लगातार एक सप्ताह पर्यन्त गुड और कडुआ तेल का सेवन नहीं करता तब तक उसका श्वास रोग शान्त नहीं होता ।

विशेष—लोलिम्बराज के लिखित इस गुड तैल के सेवन का समय एक सप्ताह का है, और चक्रपाणि के योग में तीन सप्ताह का समय दिया गया है । इस अवधि के निर्णय के लिये चिकित्सक से परामर्श करना चाहिये ॥ १४ ॥

कासरोगे रास्नादिघृतम्—

कल्केन रास्नात्रिकटुत्रिकण्टबलादिमुख्येन च कण्टकार्याः ।
रसं विपक्वेन घृतेन सद्यः कासाः समस्ताः प्रलयं प्रयान्ति ॥१५॥

व्याख्या—रास्नात्रिकटुत्रिकण्टफलादिमुख्येन सुवहाशुण्ठीमरिचपिप्पलीगोक्षुरवाट्यादि-प्रधानेन कल्केन तथा च कण्टकार्याः कण्टालिकाया रसे विपक्वेन घृतेन सद्य सपदि समस्ता पञ्चविधा कासा प्रलय प्रयान्ति विनष्टा भवन्तीत्याशय.। 'उपजातिवृत्तम्। यथोक्तम्—

चक्रपाणिना चक्रदत्ते—

घृत रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कसाधितम्। कण्टकारीरसे सर्पि पञ्चकासनिषूदनम्॥

हिन्दी—रास्ना सोंठ मिरिच पीपल गोखरू खिरेण्टी इन सबका कल्क=चटनी वनाकर कण्टकारी के रस में घी को पकाकर सेवन करने से पाचों कासों का शमन होता है।

विशेष—गो घृत ४ सेर कल्कद्रव्य १ सेर कण्टकारी का रस १ सेर इन सबको एक साथ मिलाकर घृतपाक विधि से पकावें। तयार हो जाने पर इसका सेवन ६ माशा से लेकर १ तोला तक की मात्रा में करें। यदि स्वरस प्राप्त न हो तो ८ सेर कण्टकारी के पञ्चाङ्ग को लेकर ६४ सेर जल में पकाकर १६ सेर शेष रहने पर उतारकर प्रयोग करें॥ १५॥

श्वासादौ विभीतक प्रयोग'—

दशाननस्य तनयो वदने संस्थितो जयेत्।
श्वसनं कसनं वापि तमिवानिलनन्दनः॥ १६॥

व्याख्या—दशाननस्य रावणस्य तनय पुत्र अक्ष अत्रोपधार्थे अक्षपदेन विभीतकस्य ग्रहणम्, वदने मुखे संस्थित धृत सन् श्वसन श्वासरोग कसन कासरुज तथा जयेत्, यथा त रावणपुत्रम् अक्षम् अनिलनन्दन अनिलस्य वायोर्नन्दन सूनु हनूमान् (अक्ष-कुमारम् अजयदिति)। अनुष्टुपछन्द।

हिन्दी—रावण का पुत्र अक्ष जिसका पर्यायवाची शब्द बहेड़ा है इसको मुख में रखकर चूसने से श्वास तथा कास का उसप्रकार विनाश होता है जिस प्रकार हनुमान जी ने उस (अक्षकुमार) का विनाश किया॥ १६॥

शुण्ठ्यादि क्वाथ—

अयि प्राणप्रिये जातीफललोहितलोचने।
शुण्ठीभार्ङ्गीकृतः क्वाथः कसनश्वसनाहिराट्॥ १७॥

व्याख्या—अयीति सम्बोधन जातीफललोहितलोचने मालतीफलवद् आरक्तनेत्रप्रान्त-वति प्राणप्रिये वल्लभे! शुण्ठी महौषध भार्ङ्गी पद्मा—एतयो कृतो रचित क्वाथ कषाय कसन कास श्वसन श्वास उभयोर्विनाशाय अहिराट् सर्पराड् एवास्ति। अनुष्टुप्छन्द।

हिन्दी—जातीफल के समान लाल नेत्रों वाली प्राणप्रिये! सोंठ और भारङ्गी

के क्काथ का सेवन कास एवं श्वास रोग के लिये सर्पराज के समान विनाश कारक है।

विशेष—यहाँ पर 'अहिराट्' शब्द से ग्रन्थकार का अभिप्राय वातज कास और वातज श्वास से ही है क्योंकि अहि=सर्प रोग का नाशक नहीं अपितु 'पवनाशन' होने के कारण वायु का भक्षक (अतएव नाशक) होता है ॥ १७ ॥

बालरोगेषु अतिविषाप्रयोग —

ज्वरवमीकसनानि विनाशयेदतिविषा मधुना सहिता शिशोः।
सुमुखि सुभ्रु सुवर्णविराजिते सुतनु सुन्दरि देव्यपराजिते ॥१८॥

व्याख्या—सुमुखि रुचिरास्ये सुभ्रु कमनीयभ्रूलतायुक्ते सुवर्णविराजिते काञ्चनाभरणैरलङ्कृते किंच रमणीयवर्णेन लसिते सुतनु कृशोदरि सुन्दरि चित्ताकर्षके देवि दिव्यगुणमण्डिते, अपराजिते स्वाभिमानिनि मधुना क्षौद्रेण सहिता अतिविषा शृङ्गी शिशो बालकस्य ज्वरवमीकसनानि विनाशयेत्। अतिविषागुणा —'जीर्णज्वरातिसारामविषकासवमिक्रिमीन्, हरेदिति पूर्वेणान्वय । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—हे सुन्दर मुख भौंह वर्ण शरीर तथा गुणों वाली स्वाभिमानिनि प्रिये! अतीस को मधु के साथ चटाने से बालकों के ज्वर वमन (उल्टी) तथा खासी ये रोग शान्त हो जाते हैं।

विशेष—वास्तव में अतीस का प्रयोग बाल रोगों में अत्यधिक लाभदायक देखा जाता है ॥ १८ ॥

शूलनाशनोयोग —

नश्यन्ति शूलाः कटिकुक्षिवस्तौ रूबूकतैलाद् दशमूलमिश्रात्।
यथा नराणां धनिनां धनानि समागमाद् वारविलासिनीनाम् ॥१९॥

व्याख्या—दशमूलमिश्राद उभयपञ्चमूलसयुतात् रूबूकतैलाद् एरण्डतैलात् कटिकुक्षिवस्तिभवा शूला तथा नश्यन्ति यथा धनिना विपुलैश्वर्यवता नराणा पुंसां धनानि वारविलासिनीनां पण्यवधूनां समागमात् सम्पर्कात्, चक्रपाणिरपिचक्रदत्ते—

दशमूलकषायेण पिबेद् वा नागराम्भसा।
कुक्षिवस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥
अन्यदपि— आमवातगजेन्द्रस्य कटीविपिनचारिणः।
एक एव निहन्ताऽसौ-एरण्डस्तैलकेसरी ॥

हिन्दी—दशमूलमिश्रित एरण्ड तैल के सेवन से कमर कुक्षि और वस्ति में होने वाला शूल का उस प्रकार का नाश हो जाता है जिस प्रकार वेश्या का समागम करने से धनिकों के धन का। अनुष्टुप्छन्दः।

रास्नादिकषाय —

रास्नामृतानागरदेवदारुपञ्चाङ्घ्रियुग्मेन्द्रयवैः कषायः।
रुवूकतैलेन निषेव्यमाणो भेत्ता भवेदामसमीरणस्य ॥ २० ॥

व्याख्या—रास्ना सुवहा अमृता गुडूची नागर शुण्ठी देवदारू सुरदारू पञ्चाङ्घ्रियुग्मम् उभयपञ्चमूलम् इन्द्रयव कुटजबीजम् एतेषां कषायो रूबूकतैलेनएरण्डजस्नेहेन निषेव्यमाण प्रयुज्यमान सन् आमसमीरणस्यामवातस्य भेत्ता विनाशको भवति। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रोपजाति ।

हिन्दी—रास्ना गुडूची सोंठ देवदारू दशमूल इन्द्रजौ इनके क्वाथ का एरण्ड के तेल के साथ सेवन करने से आमवात का विनाश होता है ॥ २० ॥

आमवातघ्नोऽपपरोयोग —

विलासिनीविलासेन विलासिहृदयं यथा।
तथा गुडूचीविश्वेन हरेदाम समीरणम् ॥ २१ ॥

व्याख्या—यथा विलासिनी नायिका तस्या विलासेन हावभावकटाक्षादिना विलासिहृदय रसिकपुरुषस्य चेतो हरेत् तथा गुडूची छिन्नरुहा विश्वेन शुण्ठ्या सहयुक्ता आमसमीरणम् आमवात हरेत्। अनुष्टुप्छन्द । इत्यामवातप्रतीकार॰।

हिन्दी—जिस प्रकार नायिका के हावभावादि से रसिक का हृदय हरा जाता है उसी प्रकार गुरुच का सोंठ के साथ सेवन करने से आमवात का अपहरण होता है ॥ २१ ॥

अथ नेत्ररोगप्रतीकार —

शोभाभिः परिभूतभूभ्रतनये त्रैलोक्यगीतान्वये
कान्तेऽरण्यकुलत्थिकाश्छगणजे नीरे निधायाम्बरे।
सुस्विन्ना वितुषीकृताः कररुहैर्वामभ्रुवां चूर्णिताः
पिष्ट्वा सैन्धवबोलचूर्णसहिताः सर्वाक्षिरोगापहाः ॥२२॥

व्याख्या—शोभाभि सुषमाभि परिभूता तिरस्कृता भूभ्रतनया गिरिराजसुता पार्वती यया सा तत्सम्बुद्धौ, त्रैलोक्यगीतान्वये त्रैलोक्ये त्रिलोक्या गीत स्तुत अन्वयो वंशो यस्या सा तत्सम्बोधने, कान्ते प्रियतमे। अरण्यकुलत्थिका वन्यकुलत्थ अम्बरे वस्त्रे निधाय छगणजे नीरे गोमयरसे सुस्विन्ना पाचिता वामभ्रुवा कामिनीना कररुहैर्नखै वितुषीकृता॰ त्वग्विरहीकृता पश्चाच्चूर्णिता पिष्ट्वा च सैन्धव सिन्धूत्थ बोल जातीरसम् अनयोश्चूर्णसहिता॰ सर्वाक्षिरोगापहा सर्वविधनेत्रामयघ्ना भवन्तीति। शार्दूलविक्रीडितम्।

हिन्दी—अपने शरीरसौन्दर्य से पार्वती को लज्जित करनेवाली तीनों लोकों में प्रसिद्ध वंश वाली प्रिये! जगली कुलथी को कपड़ा में बाधकर उसका गोमूत्र

में स्वेदन कर छिलके उतार कर सुखाने के बाद चूर्ण बनाकर इसमें सैन्धा नमक और बोल (गन्धरस) चूर्ण सहित सबको एक साथ पीसकर अञ्जन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोगों का शमन हो जाता है ॥ २२ ॥

जयति मारुतपित्तकफैः कृतां बहुविधामपि लोचनयोर्व्यथाम् ।
दृढतरं मधुना बहुलीकृतो बहलपल्लवपल्लवजो रसः ॥२३॥

व्याख्या—बहलपल्लवो मधुशिग्रु तस्य पल्लवजो रसो नवकिसलयोत्थस्वरस , मधुना माक्षिकेण बहुलीकृत स्फीतना नीत सम्पृक्त दृढतर बाढ सेवित सन् मारुतपित्तकफै त्रिदोषै कृता मिलितै पृथक् पृथग् वा कृता बहुविधां विभिन्नप्रकारवतीम् अपि लोचनयोर्व्यथा नेत्रपीडा जयति विनाशयतीत्यर्थ । वाग्भटोऽप्याह—

वातपित्तकफसन्निपातजां नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम् ।
शीघ्रमेव जयति प्रयोजित शिग्रुपल्लवरस समाक्षिक ॥ अष्टाङ्गहृदये ॥

चक्रपाणिरपि— शिग्रुपल्लवनिर्यास सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे ।
घृतेन धूपितो हन्ति शोथहर्षाश्रुवेदना ॥

अत्र योगे घृतस्य यौगिकत्वेनास्य प्रयोगो विहितो वर्तते एतदेव तस्माद् वैशिष्ट्यम् ।
द्रुतविलम्बितवृत्तम् ।

हिन्दी—लाल सहजन की पत्ती का रस मधु मिलाकर आंखों में डालने से वात पित्त कफ जनित तथा और भी अनेक प्रकार की नेत्र बाधायें निश्चित दूर हो जाती हैं ॥ २३ ॥

अर्जुनचिकित्सामाह—

कुवलयनयनेऽर्जुनं कफोत्थः सह सितयाशु निराचरीकरीति ।
प्रियकरमिव कामिनी नवोढा निहितमुरोजयुगे लघुप्रमाणे ॥२४॥

व्याख्या—हे कुवलयनयने कुवलय नीलकमल तद्वन्नीले नयने नेत्रतारिके यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, सह सितया प्रयुक्त कफोत्थ समुद्रफफ अर्जुन तदाऽऽख्यनेत्ररोगम् आशु निराचरीकरीति दूरीकरोति । यथा नवोढा नवविवाहिता कामिनी कामप्रवणापि लघुप्रमाणे स्वल्पाकारवति उरोजयुगे स्तनयुग्मे निहितम्प्रयुक्त प्रियकरमिव पत्यु पाणिपल्लवमिव आशु निराचरीकरीति, पूर्वेण सम्बन्ध । पुष्पिताग्रावृत्तम् । अर्जुनरोगस्य स्वरूपम्—

एको य शशरुधिरोपमश्च विन्दु ।
शुक्लस्थो भवति तमर्जुन वदन्ति ॥ सु उ अ ४ ॥

मतान्तरे यथाह रविगुप्त —कृष्णभागे सित विन्दु शुक्ल विद्यात् कफात्मकम् ।
रक्त च शुक्लभागस्थमर्जुन शोणितोद्भवम् ॥

चिकित्सासाम्यम्— शङ्ख क्षौद्रेण संयुक्त कनक सैन्धवेन वा ।
सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ चक्रदत्ते ।

हिन्दी—नीलकमल के सदृश नेत्रवाली प्रियतमे! मिश्री के साथ समुद्र फेन का प्रयोग उस प्रकार अर्जुन (फूली) नामक नेत्र रोग को शीघ्र दूर हटाता है, जिस प्रकार नवविवाहित कामिनी अपने छोटे स्तनों के ऊपर रखे गये अपने प्रियतम के हाथ को ॥ २४ ॥

सामान्यनेत्ररोगचिकित्सा—

इति निगदितमार्ये नेत्रसारं विधत्ते
घृतमधुसमवेता सेविताग्र्या निशायाम्।
शशिमुखि रतिलीलालोलदृष्टे त्वमग्र्या
कथमहह विधत्से वैपरीत्यं परन्तु ॥ २५ ॥

व्याख्या—हे आर्ये! रत्नकले! घृतमधुसमवेता गव्याज्यमाक्षिकाभ्यां सम्मिलिता अग्र्या त्रिफला निशाया रात्रौ सेविता प्रयुक्ता सती नेत्रसारं नयनसुखं विधत्ते करोतीति निगदितं कथितम्। हे शशिमुखि! चन्द्रवदने! रतिलीलालोलदृष्टे रतिलीला कामक्रीडा तस्यां लोला चञ्चला दृष्टिः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, यद्यपि त्वम् अग्र्या बुद्धिमती विदुषी च तथापि, अहह! इत्याश्चर्ये वैपरीत्यं मैथुनरूपं विपरीताचरणं कथं कस्मात् कारणात् विधत्से करोषि, यतोहि नेत्ररोगेषु मैथुनम् अपथ्यत्वेन निषिद्धम्। तद्यथा—

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान्।
नरो न सेवेत हिताभिलाषी रोगेषु सर्वेषु दृगाश्रयेषु ॥

हिन्दी—हे आर्य गुणोंवाली रत्नकला! रात में घी और मधु के साथ त्रिफला का सेवन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोगों में लाभ होता है। चन्द्रमा के सदृश मुख तथा काम क्रीडा में चञ्चल चितवन वाली प्रियतमा यद्यपि तुम श्रेष्ठ हो फिर भी इस प्रकार का विपरीत आचरण क्यों कर रही हो। मालिनी वृत्तम्।

विशेष—इस पद्य में त्रिफला सेवन की विशेषता एवं नेत्र रोग में मैथुन अपथ्य होता है, इन दो बातों का उल्लेख ग्रन्थकार को अभिमत है ॥ २५ ॥

नक्तान्ध्यचिकित्सा—

निराकरोति नक्तान्ध्यं तथा गोशकृता कणा।
यथा रतेन रमणी रमणस्य महाबलम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—गोशकृता गोमयरसेन युक्ता कणा पिप्पली नक्तान्ध्यं रात्र्यन्धत्वं तथा निराकरोति दूरीकरोति यथा रमणी नवोढा नायिका रमणस्य मैथुनशीलस्य पुंसः महाबलम् (निराकरोतीत्यर्थः)। अनुष्टुप्छन्दः।

हिन्दी—रतौंधी रोग में गाय के गोबर के रस में पीपल को पीसकर नेत्रों में लगाने से उक्त रोग उस प्रकार क्षीण हो जाता है, जिस प्रकार अधिक मैथुन करने से मानव का बल (क्षीण हो जाता है) ॥ २६ ॥

नेत्रकुसुमरोगे अपराजिता प्रयोग —

श्वेतापराजितामूलं घर्षितं शीतवारिणा ।
अञ्जनान्नेत्र कुसुमं कुसुमस्य निकृन्तनम् ॥ २७ ॥

व्याख्या--शीतवारिणा शिशिरजलेन घर्षित घृष्ट श्वेतापराजितामूल गिरिकार्णिकाया जटा तस्य अञ्जनात् प्रयोगात् नेत्रकुसुम चक्षुस्थपुष्पाऽऽख्यरोग तस्य कुसुमरूपरोगस्य निकृन्तन विनाशकर भवति । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—सफेद अपराजिता की जड को शीतल जल में घिसकर आंख में लगाने से कुसुम (फूली या फूला) रोग का शमन होता है ॥ २७ ॥

शुक्ररोगे माक्षिकप्रयोग —

नारिकेलफलस्थूलस्तनमोहितमानसे ।
हरिणाक्षि हरेच्छुक्रं माक्षिकं माक्षिकान्वितम् ॥ २८ ॥

व्याख्या—नारिकेलफलस्थूलस्तनमोहितमानसे दृढफलवत्पीनकुचयुगलाभ्या मोहित स्वायत्तीकृत मानस मन यया सा तत्सम्बुद्धौ इत्थम्भूते हे हरिणाक्षि हरिणस्य अक्षिणी-इव अक्षिणी यस्या सा तत्सम्बोधने हे मृगनयनि ! माक्षिकान्वित क्षौद्रेण सहित माक्षिक स्वर्णमाक्षिक शुक्र शुक्ल कुसुमाऽऽख्य रोग हरेद् विनाशयेत । अनुष्टुप्छन्द. ।

चक्रपाणिरपि तथैव व्याचक्षते— ताम्य मधुकसारो वा बीजञ्चाक्षस्य सैन्धवम् ।
मधुनाञ्जनयोगा स्युश्चत्वार शुक्रशान्तये ॥

हिन्दी—नारियल के सदृश स्थूल स्तनों से मन को मोहित करनेवाली, हरिण के समान विशाल एव चञ्चल नेत्रों वाली प्रिये ! स्वर्णमाक्षिक को शुद्ध करके मधु के साथ घिसकर उसका अञ्जन लगाने से शुक्र (फूली) रोग का शमन होता है ॥ २८ ॥

इति नेत्ररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथकामलाचिकित्सामाह—

सवासावयस्थे सभूनिम्बनिम्बे सतिक्तोत्तमे क्षौद्रयुक्ते कषाये ।
निपीते ध्रुवं क्षीयते पाण्डुरोगान्विता कामलाकोमलाऽकोमलापि ॥२९॥

व्याख्या—हे उत्तमे श्रेष्ठगुणशालिनि ! सवासावयस्थे वासकहरीतक्यौ (वयस्था शब्देन गुडूचीमपि गृह्णन्ति) ताभ्या सह सभूनिम्बनिम्बे किराततिक्तपिचुमर्दाभ्या साक सतिक्ता कटुकया सम क्षौद्रयुक्ते मधुमिश्रिते कषाये क्वाथे निपीते सेविते सति कोमला नवीना अकोमला प्राचीनापि पाण्डुरोगान्विता पाण्डुरोगेण सयुक्ता कामला ध्रुव क्षीयते विनश्यतीत्यर्थ । एषयोग कामलाया पाण्डुरोग च पृथक् पृथक् प्रयुक्तोऽपि लाभकरो भवति । भुजङ्गप्रयातम् । कामलापाण्डुरोगलक्षणानि चरकादिषु द्रष्टव्यानि ।

यथाह चक्रपाणिः— फलत्रिकाऽमृतावासातिक्ता भूनिम्बजैः कृतः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात् पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ चक्रदत्ते ।

हिन्दी—हे रत्नकला ! अडूसा हरीतकी चिरायता नीम की छाल और कुटकी इनके क्वाथ का मधु के साथ सेवन करने से नवीन अथवा पुराना पाण्डुरोग सहित कामला रोग का शमन होता है ॥ २९ ॥

पटोलादि क्वाथ —

पटोलपाठाकटुरोहिणीनां छिन्नोद्भवाशीतमधुस्रवाणाम् ।
क्वाथो विषच्छर्दिवलासपित्तकुष्ठज्वरारोचककामलासु ॥३०॥

व्याख्या—पटोल राजीफल पाठा अम्बष्ठा कटुरोहिणी कटुका तासां, तथा छिन्नोद्भवा गुडूची अशीतम् ऊषणम् मधुस्रवो गुडपुष्प समांशकानाम् एतेषां द्रव्याणां कृत कषाय विषे तज्जन्यविकारे छर्द्यां वमने बलासे कफोत्थे रोगविशेषे पित्तविकारे ज्वरे अरोचके कामलायाञ्च सेव्य । उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—परवल पाठा कुटकी गिलोय मरिच महुआ इनको समभाग लेकर क्वाथ बनावे । यह क्वाथ विष विकार वमन कफ और पित्त विकार कुष्ठ ज्वर अरुचि तथा कामला रोग में लाभ करता है ॥ ३० ॥

कामलाहरो योग —

उडुनाथबलापिचुमन्दबला त्रिफला कटुका कथितं सलिलम् ।
घृतमाक्षिकमत् किल कामलया सहितस्य हिताय बुधैः कथितम् ॥३१॥

व्याख्या—उडुनाथ सोमराजी बला महाबला पिचुमन्दो निम्ब बला अतिबला, त्रिफला हरीतक्यादिफलत्रय कटुका कटुरोहिणी एभिर्द्रव्यैः क्वथित सलिल परिपक्वजल घृतमाक्षिकमद् गोघृतमधुभ्यां मिलित कामलया सहितस्य पाण्डुरोगस्य हिताय लाभाय बुधैः तद्विद्य वैद्यैः कथितम् आम्नात किलेति प्रसिद्धे । तोटकवृत्तम् ।

हिन्दी—बाकुची महाबला (सहदेई) नीम की छाल अतिबला (कघी) त्रिफला कुटकी इन ओषधियों से निर्मित क्वाथ में (विषम भाग) घी और मधु मिलाकर सेवन करने से कामलायुक्त पाण्डुरोग शान्त हो जाता है, ऐसा विद्वान् वैद्यों का कथन है ॥ ३१ ॥

कामलाहरो योग —

त्रिफलया मधुना रजसाऽयसः कटुकया पिचुमन्दसमेतया ।
प्रलयमेति मनस्विनि कामला सघृतयाऽमृतया कुसुमाम्बुना ॥३२॥

व्याख्या—हे मनस्विनि स्वात्माभिमानिनि ! अग्रेलिखितैस्त्रिभिर्योगैः कामला रोगविशेष प्रलयमेति विनश्यति, योगा —त्रिफलया फलत्रिकेण अयसो रजसा लोहभस्मना

मधुना क्षौद्रेण च एको योग , पिचुमन्दसमेतया निम्बयुक्तया कटुकया तिक्तया इत्यपरो योग सघृतया गव्येन सहितया अमृतया गुडूच्या कुसुमाम्बुना मधुना, इति तृतीयो योग ।

हिन्दी—हे स्वाभिमानवाली रत्नकला ! नीचे लिखे हुए तीन योगों से कामला रोग का विनाश होता है । अर्थात् इनका सेवन करने वाला कामला रोगी अपने रोग से मुक्त हो जाता है । योग—त्रिफला का चूर्ण, लौह, भस्म, मधु के साथ या नीम तथा कुटकी का चूर्ण,—अथवा घी और मधु के साथ गुरुच । द्रुतविलम्बित वृत्तम् ।

विशेष—इस श्लोक का प्रथम पद मूल में इस प्रकार है, "समधुलोह रजस्त्रिफलामृता" व्याकरण की दृष्टि से इसकी अर्थ सगति नहीं होती अत· उन्हीं द्रव्यों को इस प्रकार "त्रिफलया मधुना रजसाऽयस " बदल दिया है ॥ ३२ ॥

अपर· कामलाहरो योग —

हिङ्गुना पूर्णनेत्राणां द्रोणपुष्पीरसेन वा ।
कामला मूलतो याति देहिनां पथ्यकारिणाम् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—हिङ्गुना हिङ्गुपत्रीरसेन पूर्णनेत्राणा रोगिणा द्रोणपुष्पी द्रोणा (गूमेति लोके-प्रसिद्धा) तस्या रसेन वा 'पथ्यकारिणाम्पथ्याशिना देहिना शरीरिणा रोगिणा कामला रोगविशेषो मूलतो याति समूल विनश्यतीत्यर्थ । अनुष्टुप्छन्द ।

यथाह चक्रपाणि — अञ्जन कामलार्ताना द्रोणपुष्पी रस· स्मृत ॥ चक्रदत्ते ॥

कामलारोगे पथ्यम्—पुराणयवगोधूमशालयश्च पुनर्नवा ।
मुद्गाढकीमसूराणा यूपो जागलजो रस ॥
पटोल वृद्धकूष्माण्ड तरुण कदलीफलम् ।
मत्स्येषु मुद्गर श्रृङ्गी तक्र धात्र्यभया घृतम् ॥
रसोन पक्कमाम्रञ्च वार्ताकुरमृता निशा ।
कामलारोगिणामेतत् पथ्यमुक्त चिकित्सकै ॥

हिन्दी—कामला रोगी के नेत्रों में हिंगुपत्री का या द्रोणपुष्पी (गूमा) का रस डालने से और पथ्य का सेवन करने से कामला रोग का समूल विनाश हो जाता है ॥ ३३ ॥

कामलारोगनाशकम् अञ्जनम्—

कामलामलमूलस्योन्मूलनं किल कल्पयेत् ।
गौरीगैरिकगौरीभिरञ्जनं जनरञ्जनम् ॥ ३४ ॥

व्याख्या—गौरी हरिद्रा गैरिक स्वर्णगैरिक गौरी धात्री गोरोचन वा एभिर्द्रव्यैः निर्मितम् एतद् अञ्जन जनरञ्जन रोगनाशकत्वात् लोकप्रमोदकरं भवति अत एतेन

कामलामलमूलस्य कामला एव मलो रोग तस्य मूलस्य रोगोत्पत्तिकारणस्य उन्मूलन विनाशन किलेति प्रसिद्धे कल्पयेत् । अनुष्टुप्छन्द ।

यथाह चक्रपाणि चक्रदत्ते—

निशागैरिकधात्रीणा चूर्णं वा सम्प्रकल्पयेत ।

हिन्दी—हल्दी स्वर्णगैरिक (हिरौजी) और आवला के चूर्ण का 'अञ्जन लगाने से कामला रोग का विनाश हो जाता है। रोग विनाशक होने के कारण यह अत्यन्त लोक प्रिय है ॥ ३४ ॥

कामलारोगे स्वरसप्रयोग.—

छिन्नारसो वा त्रिफलारसो वा दार्वीरसो वा पिचुमन्दकं वा ।
प्रातः प्रपीतो मधुना समेतः सकामलानां सुधया समानः ॥३५॥

व्याख्या—छिन्ना गुडूची तस्या रस वा, अथवा त्रिफला फलत्रिक तस्य रस वा, दार्वी हरिद्रा तस्या रस वा, पिचुमन्दक निम्ब तस्य रस वा प्रात प्रभाते मधुना समेत क्षौद्रेण मिश्रित प्रपीत पीत सन् कामलाना कामलारोगवता कृते सुधया समान पीयूषकल्पो भवति । इन्द्रवज्रावृत्तम् । यथाह चक्रपाणि ।

चक्रदत्ते— त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रस ।
प्रातर्माक्षिकसयुक्त शीलित कामलापह ॥

हिन्दी—गुरुच त्रिफला दारुहल्दी अथवा नीम इनमें से किसी एक के रस को मधु मिलाकर प्रात.काल सेवन करने से कामला रोग का विनाश होता है। यह योग कामला रोग से पीड़ित मानवों के लिये अमृत के समान लाभदायक है ॥३५॥

इति कामलाप्रतीकार ।

अथ योनिशूलप्रतीकार —

पिचुमन्दसमीरशत्रुबीजैः पिचुमन्दस्य रसेन साध्यमाना ।
गुटिका भगगर्भवर्तमाना भगशूलस्य महाबलस्य हन्त्री ॥ ३६ ॥

व्याख्या—पिचुमन्दो निम्ब समीरशत्रु एरण्ड एतयो बीजै फलचूर्णै पिचुमन्दस्य रसेन साध्यमाना विरच्यमाना गुटिका वटी भगगर्भवर्तमाना योनिमध्यस्थिता सती महाबलस्य तीव्रस्य भगशूलस्य योनिवेदनाया हन्त्री विनाशिका भवतीति । मालभारिणी वृत्तम् ।

हिन्दी—नीम तथा एरण्ड के बीजों के चूर्ण को नीम के रस की भावना देकर गोली बनाकर योनि के भीतर रखने से तीव्र योनि शूल का शमन होता है ॥ ३६ ॥

अपरो योग—

छागीघृतेनोत्तरवारुणीनां मूलानि पिष्ट्वा गुटिका निबद्धा ।
तन्व्याः सुदृष्टे सुभगे भगस्था भगायुधाऽऽख्यं गदमाशुहन्ति ॥ ३७ ॥

व्याख्या—हे सुदृष्टे ! शोभना दृष्टिर्यस्या स तत्सम्बुद्धौ, तथा हे सुभगे ! ऐश्वर्य-शालिनि ! उत्तरवारुणीनाम् इन्द्रवारुणीना मूलानि जटा छागी घृतेन अजाया आज्येन पिष्ट्वा चूर्णीकृत्य निवद्धा घटिता गुटिका वटी तन्व्या कृशोदर्या भगस्था योनिमध्यधृता भगायुधाऽऽख्य भर्ग शिव तस्य आयुध शूल त गद रोगम् आशु शीघ्र हन्ति विनाशयति । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—हे सुन्दर दृष्टि एवं ऐश्वर्य युक्त रत्नकला इन्द्रायण की जड़ को घी में पीसकर गोली बनाकर योनि के भीतर रखने से योनिशूल का शमन होता है ॥३७॥

सुखप्रसवोपाय —

पिष्टानि यष्टीमधुबीजपूरबीजानि मध्वाज्ययुतानि पीत्वा ।
सूते शरच्चन्द्रमुखी सुखेन मूर्खस्य वैद्यस्य विकल्पनाऽत्र ॥ ३८ ॥

व्याख्या—यष्टी मधुयष्टी मधु मधुकर्कटी, यथोक्तम् अभिनवनिघण्टौ 'बीजपूरोऽपर प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी' बीजपूरो मातुलुङ्ग एतयो पिष्टानि चूर्णीकृतानि बीजानि मध्वाज्ययुतानि घृतमधुमिश्रितानि पीत्वा शरच्चन्द्रमुखी चन्द्रवदना सुखेन सूते बाल जनयति, अत्र योगे मूर्खस्य वैद्यस्य विकल्पना सन्देह, न त्वन्यस्य । इन्द्रवज्रावृत्तम् । यथाह चक्रपाणि —

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुक मधुसयुतम् । घृतेन सह पातव्य सुख नारी प्रसूयते ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—मुलेठी मधुकर्कटी (कुमाउनी भाषा में–मतकाकड़ी) बिजौरा नीबू इनके बीजों को पीसकर घी और शहद के साथ मिलाकर पीने से सुखपूर्वक प्रसव होता है । इस योग के सम्बन्ध में केवल मूर्ख वैद्यों को ही सन्देह होता है और किसी को नहीं ॥ ३८ ॥

वज्रीदुग्ध प्रयोग —

अपूर्वमेकं विहितं त्वया नो कल्याणशीलेऽचपले चलाक्षि ।
बोभूयते मूर्धनि वज्रिदुग्धे न्यस्ते वधूनां सुखतः प्रसूतिः ॥ ३९ ॥

व्याख्या—हे कल्याणशीले परोपकारवति अचपलेऽचञ्चले साध्वि चलाक्षि चञ्चल-नयने त्वया एकम् अपूर्व योग विहितम् उपदिष्टम् । मूर्धनि शिरसि वज्रिदुग्धे स्नुहीपयसि न्यस्ते धृते सति वधूना गर्भिणीना सुखत प्रसूति बोभूयते सम्भवतीत्यर्थ । उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—हे कल्याणकारक स्वभाव सरल तथा चञ्चल नेत्रों वाली प्रिये ! तुम ने एक अपूर्व योग का वर्णन किया । वह योग निम्नलिखित है—प्रसवकाल में यदि गर्भवती के शिर में सेहुण्ड का दूध रख दिया जाय तो अधिक सरलता के साथ प्रसव होता है ॥ ३९ ॥

स्तन्यवृद्धिकरो योग —

कृतप्रशंसे प्रथमप्रसङ्गे विलासिनीनां कठिनस्तनीनाम् ।
कुर्याद् विदारीजपयःपयोभिः पयोभिवृद्धिं कुटिलालकानाम् ॥४०॥

व्याख्या—प्रथमप्रसङ्गे प्रारम्भिकसमागमकाले कृतप्रशसे कृता प्रशसा यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, कठिनस्तनी कठोरस्तनवतीनां कुटिलालकानाम् अरालकेशीना विलासिनीनां नवयुवतीना विदारीजपयः विदार्या चूर्णेन सिद्ध पय दुग्ध पयोभि गवा दुग्धै सह सेवित पयोऽभिवृद्धि दुग्धस्फीतिं कुर्यात् । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—प्रथमसमागमकाल में प्रशसित घुंघुराले बाल वाली तथा कठोरस्तन वाली प्रियतमे ! दूध में पकाये हुए विदारी चूर्ण का दूध के साथ सेवन करने से विलासिनियों के दुग्ध की वृद्धि होती है ॥ ४० ॥

दुग्धवृद्धिकरो द्वितीयो योग —

भजन्ति या निर्मलतण्डुलानां रजांसि दुग्धेन सह स्थितानि ।
क्षीरौदनेनैव सहस्थितानां तासां वधूनां सखि दुग्धमृद्धम् ॥ ४१ ॥

व्याख्या—हे सखि ! रत्नकले ! अत्र सखिशब्देन लोलिम्बराज स्व प्रेयसीं सम्बोधयति, यथोक्त चाणक्येन 'भार्या मित्र गृहेषु च'। या स्त्रियो दुग्धेन पयसा सह स्थितानि मिलितानि निर्मलतण्डुलाना विमलशालिना रजांसि चूर्णानि भजन्ते सेवन्ते तासा किंवा क्षीरोदनेनैव सहस्थिताना दुग्धौदनमात्रभोजनपराणां वधूनां दुग्ध स्तन्यम् ऋद्धम्भवति वर्धते । उपजातिवृत्तम् ।

दुग्धेन शालितण्डुलचूर्णपान विवर्द्धयेत् । स्तन्य सप्ताहत क्षीरसेविन्यास्तु न सशय ॥चक्रदत्ते॥

हिन्दी—हे सखी ! साफ किये हुए शालि चावलों के चूर्ण का दूध के साथ सेवन करनेवाली, तथा केवल दूध के साथ शालि चावलों का भात खानेवाली स्त्रियों का दूध बढ़ जाता है ॥ ४१ ॥

रज प्रवृत्तौ प्रयोग —

इन्द्रवारुणिकामूलं योनिमण्डलमध्यगम् ।
प्रतीप्रदर्शिनी पुष्प रोधध्वंसनसाधनम् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—योनिमण्डलमध्यग भगमध्यधृतम् इन्द्रवारुणिकामूल गवाक्षीमूल प्रतीपदर्शिनी नारी तस्या पुष्परोधध्वसनसाधन रज प्रवृत्तौ कारणम्भवतीति । सत्या गर्भस्थितौ योगोऽय न प्रयोक्तव्य । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—इन्द्रायण की जड़ का बाहरी भाग छीलकर हटा दें फिर उसको पीसकर योनि के भीतर रखने से नष्टार्तव अथवा कष्टार्तव रोग दूर हो जाता है ।

विशेष—इसकी बत्तीसी बनाकर गर्भाशय के मुख के भीतर डाल देने से आर्तव की प्रवृत्ति शीघ्र होने लगती है । इसके सेवन के पूर्व यह मालूम कर लेना

चाहिये कि मासिक धर्म गर्भाधान के कारण तो रुका नहीं है। गर्भावस्था में इसका प्रयोग कदापि न करें ॥ ४२ ॥

तमेव योग प्रकारान्तरेण—

यदि भवदनुजायाः पुष्परोधोऽस्ति मुग्धे
क्षिप मृदुलमुपस्थे स्थूलमूलं गवाक्ष्याः।
वदति वचनमित्थं लोलिम्मराजे
हर हर हरिणाक्षी ह्रीसमुद्रे निमग्ना ॥ ४३ ॥

व्याख्या—हे मुग्धे! प्रेयसि। यदि भवदनुजाया तवभगिन्या पुष्परोधोऽस्ति नष्टार्तवरोगोऽस्ति तर्हि मृदुलमुपस्थे कोमलाया योनौ गवाक्ष्या इन्द्रवारुण्या स्थूलमूल वृहदाकारा जटां क्षिप प्रवेशय इत्थं पूर्वोक्तप्रकारक वचन लोलिम्मराजे स्वस्वामिनि वदति सति हर हरेनिलज्जाया नीमानुभूति तस्या, हरिणाक्षी मृगनयनी ह्री समुद्रे ही लज्जा एव समुद्र तस्मिन निमग्ना पतिता, अर्थात् लज्जावनतमुखी जातेत्यर्थ। मालिनी वृत्तम्।

हिन्दी—हे रत्नकला! यदि तुम्हारी बहिन को नष्टार्तव रोग है तो उसकी योनि में इन्द्रायण की मोटी जड़ को डाल दो (इससे मासिक स्राव खुलकर होने लगेगा।) इतना सुनते ही रत्नकला लज्जा रूपी समुद्र में मानो डूब गई। अर्थात् उसने लज्जित होकर अपना सिर नीचा कर लिया।

विशेष—लोलिम्बराज ने इस पद्य में उपहास का स्वरूप मात्र प्रदर्शित किया है। यही योग इसके पूर्व श्लोक में वर्णित है। ग्रन्थकार का 'लोलिम्बराज' के अतिरिक्त 'लोलिम्मराज नाम भी अनेक स्थलों पर प्राप्त है। ॥ ४३ ॥

स्तन्यशोधनोपाय —

दुष्टं भवेद्यदि पयः पुरतो भवत्या—
स्तर्हि प्रियस्तनि भजस्व सुखं कषायम्।
गोप्यौषधामृतवृकीकटुकाब्दमूर्वा-
भूनिम्बदारुसुरराजयवप्रयोगम् ॥ ४४ ॥

व्याख्या—हे प्रियस्तनि रमणीयकुचवति! यदि भवत्या रत्नकलाया: पुरत अग्रे पय: दुग्ध दुष्ट दूषित भवेत्त तर्हि सुख सुखकर निम्नलिखित कषाय क्वाथ भजस्व। क्वाथ्य-द्रव्याणा निर्देश—गोपी सारिवा औषधं शुण्ठी अमृता गुडूची वृकी पाठा कटुका तिक्ता अब्द मुस्तक मूर्वा पीलुपर्णी भूनिम्ब किरात दारु देवदारु सुरराजयव इन्द्रज एतेषां द्रव्याणा क्वाथरूपेण प्रयोग कुरु। वसन्ततिलकावृत्तम्।

हिन्दी—हे सुन्दर स्तनों वाली रत्नकला! यदि आगे कभी आपके स्तनों का दूध दूषित हो जाय तो उस रोग में लाभदायक निम्नलिखित दस द्रव्यों के क्वाथ

का सेवन करना चाहिये। द्रव्य-सारिवा सोंठ गिलोय पाढल कटुकी नागरमोथा मूर्वा चिरायता देवदारु और इन्द्रजौ ॥ ४४ ॥

सूतिकाज्वरादौ योग —

श्रीखण्डपर्पटघनामृतधान्यसेव्य-
ह्रीवेरयासकबलातिविषारलूनाम् ।
क्वाथो हितो भवति गर्भिणि सूतिकासु
सद्यो रुगामरुधिरातिसृतिज्वरघ्नः ॥ ४५ ॥

व्याख्या—हे गर्भिणि ! गर्भोऽस्यास्तीति गर्भिणी तत्सम्बुद्धौ, श्रीखण्ड रक्तचन्दन पर्पट वरतिक्त घन मुस्ता अमृता गुडूची सेव्यम् उशीर ह्रीवेरम् उदीच्य यासक· यवास बला महाबला, अतिविषा विषा अरलु श्योनाक एनेषा क्वाथ सूतिकासु प्रसवकालादारभ्य सार्धमासपर्यन्त जायमानेषु विकारेषु प्रयोज्य तथा एष योग सद्योरुगामरुधिरातिसृति-ज्वरघ्न सद्योरुज तात्कालिकीं वेदनाम् आमातिसार रक्तातिसार अतिसार ज्वरञ्च विनाशयति । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

ह्रीवेरादिकषाय —

ह्रीवेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथ पिबेद् गर्भिणी ।
नानादोषयुतातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽय मुनिभि· पुरानिगदित सूत्यामये शस्यते ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—हे गर्भिणी ! निम्नलिखितयोग सूतिका रोग, तात्कालिक वेदना आमातिसार रक्तातिसार तथा ज्वर का विनाश करता है। क्वाथ्यद्रव्य-लालचन्दन, पितपापड़ा, नागरमोथा, गुरुच, खस, सुगन्धवाला, जवासा, खिरेंटी अतीस, सोनापाठा।

विशेष—प्रसव काल के बाद ४५ दिन तक होने वाले विकारों को सूतिका रोग कहते हैं। चक्रदत्त आदि चिकित्सा ग्रन्थों में यह योग ह्रीबेरादि क्वाथ के नाम से प्रसिद्ध है। चक्रपाणि ने इस योग में धनियाँ अधिक लिखा है ॥ ४५ ॥

प्रदरहरोयोग —

रसाञ्जनाम्भोधरदारुपीताभूनिम्बभल्लाततिलैः कषायः ।
क्षौद्रान्वितश्चञ्चललोचनानां नानाविधानि प्रदराणि हन्ति ॥ ४६ ॥

व्याख्या—रसाञ्जन दार्वीरसोद्भव द्रव्यम् अम्भोधर मुस्ता दारुपीता दारुहरिद्रा भूनिम्ब किरात भल्लात शोमकृत तिल कृष्णतिल एभि द्रव्यै। कृत· क्षौद्रान्वित मधुना सहित कषाय क्वाथ चञ्चललोचनाना नवयुवतीनां नानाविधानि चतुष्प्रकारकाणि प्रदराणि हन्ति विनाशयति। उपजातिवृत्तम्।

दार्व्यादिक्वाथ —दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिराततिल्व भल्लातकैरवकृतो मधुना कषाय.।
पीतो जयत्यतिबल प्रदर सशूल पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम्॥चक्रदत्ते॥

हिन्दी—रसौत नागरमोथा दारुहल्दी चिरायता भिलावा काला तिल इनके क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से नव युवतियों के सभी प्रकार के प्रदरों का विनाश हो जाता है ॥ ४६ ॥

प्रदरे कुशमूलप्रयोग —

भुवनत्रितयेऽपि निस्तुले कुशमूल प्रदरं विनाशयेत्।
कलिकल्मषनाशनोचितं विमलं शालिजलेन सेवितम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—हे भुवनत्रितयेऽपि निस्तुले त्रिलोक्यामपि यस्या रूपशीलादीना तुलना नास्ति, इत्थम्भूते स्तकले! कलिकल्मषनाशनोचित कलियुगोत्पन्न पापसमूहविनाशदक्ष कुशमूल दर्भजटा विमल विशुद्ध शालिजलेन तण्डुलवारिणा सेवित प्रदर स्त्रीणा रोगविशेष विनाशयेत् (यथाह चक्रपाणि —
कुशमूल समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना। एतत् पीत्वा त्र्यहाचारी प्रदरात् परिमुच्यते॥चक्रदत्ते॥

हिन्दी—तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ रत्नकला! सम्पूर्ण कलियुग के पापों का विनाश करने वाली कुश की जड़ निर्मल शालि चावलों के धोवन से सेवन करने पर प्रदर रोग का विनाश करती है। वियोगिनीवृत्तम् ॥ ४७ ॥

गर्भिणीशूलहर कषाय —

उरुबुककुशकाशगोक्षुराणां कनकलते ललिताकृते स्त्रि मूलैः।
शृतमिदमपहन्ति दुग्धमिन्दुद्युतिमुखि गर्भवतीजनस्य शूलम् ॥ ४८ ॥

व्याख्या—उरुबूककुशकाशगोक्षुराणाम् एरण्टदर्भपोटगलत्रिकण्टकाना मूलै जटाभि शृत पाचित दुग्ध पय गर्भवतीजनस्य धृतगर्भाया स्त्रिय शूल वेदनाम् अपहन्ति विनाशयति। हे कनकलते कृशोदरि ललिताकृते रुचिरतनु इन्दुद्युति चन्द्रमुखि स्त्रि! उपरिलिखितोऽय योगो गर्भवतीशूल हरति। यथाह चक्रपाणि —
कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च। शृत दुग्ध सितायुक्त गर्भिण्या शूलनुत् परम् ॥चक्रदत्ते॥

हिन्दी—हे कृशोदरी सुमुखी चन्द्रमा के समान कान्ति वाली स्त्री! रेड की जड़ कुश कास तथा गोखरू की जड़ों के कल्क से पकाया हुआ दूध, गर्भिणियों के शूल को शान्त करता है ॥ ४८ ॥

स्तनरोगहरो लेप —

सुन्दरि कामिनि मङ्गलमूर्त्ते यौवनशालिनि निर्मलवृत्ते।
शाम्यति सत्वरमेव विशालामूलविलेपनतस्तनपीडा ॥ ४९ ॥

व्याख्या—सुन्दरि रमणीये, कामिनि वासनायुक्ते मङ्गलमूर्ते सौम्याकृतिमति, यौवन-

शालिनि नवोधद्यौवने निर्मलवृत्ते सच्चरित्रवति विशालामूलविलेपनत' इन्द्रवारुणीमूल-लेपात् स्तनपीडा सत्वरमेव यथाशीघ्र शाम्यति । यथाह चक्रपाणि —

विशालामूललेपस्तु हन्ति पीडा स्तनोत्थिताम् ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—सुन्दरी कामिनी सौम्य आकृतिवाली युवती तथा सच्चरित्र रत्नकला ! इन्द्रायण की जड़ का लेप स्तनों की पीड़ा को शीघ्र ही शान्त करता है दोधकवृत्तम् ॥ ४९ ॥

सर्वेश्वररसप्रयोग —

अशुभेषु गदेषु भीरुमुख्ये सखि ! सर्वेश्वर एव सेवनीय. ।
सगुणो निरपत्यताकुठारः पवमानो द्विपदन्तकार्तिहारी ॥ ५० ॥

व्याख्या—हे भीरुमुख्ये कातरस्वभावप्रधाने सखि ! अशुभेषु कुष्ठादिरोगेषु सर्वेश्वर सर्वेश्वरलौह एव सेवनीय, यतो हि एष लौह. सगुण सद्गुणै पूरित निरपत्यताकुठार सन्तानप्रद वीर्यवर्धकत्वात्, पवमान वायु द्विपच्छत्रु अन्तको मृत्यु. तस्यार्ति. तस्या-हारी विनाशकारी सम्प्रदिष्ट । मालभारिणीवृत्तम् ।

सर्वेश्वरलौह —

शुद्धसूत पल गन्ध द्विपलन्तु मृताभ्रकम् । त्रिपल मृतताम्रञ्च पलार्द्धं स्वर्णमाक्षिकम् ॥
जैपाल चित्रक मान शूरण षण्टकर्णकम् । ग्रन्थिक त्रिफलाव्योष त्रिवृता खरमञ्जरी ॥
दण्टोत्पला वृश्चिकाली कुलिश नागदन्तिका । सूर्यावर्तञ्च सञ्चूर्ण्य कर्षमात्र विमर्दयेत् ॥
आर्द्रकस्य रसैरेव चूर्णयित्वा पुन क्षिपेत् । त्रिपल लौहचूर्णस्य तत खादेच्छुभेऽहनि ॥
सम्पूज्य भास्कर विष्णु गणनाथ द्विजोत्तमम् । गुञ्जाद्वयञ्च मधुना कृत्वा शीतजल पिबेत् ॥
चूर्ण सर्वेश्वर नाम सर्वरोगहर भवेत् । कठोरप्लीहनाशाय गुल्मोदरहर तथा ॥
कामला पाण्डुमानाह यकृत्कृमि कृतामयान् । विचर्चिमम्लपित्तञ्च कण्डू कुष्ठ विनाशयेत् ॥
प्लीहानमस्रपित्तञ्चाप्यग्निमान्द्य सुदुस्तरम् । श्रीकर पुत्रजनन शुक्रायुर्बलवर्धनम् ॥
भै० र० ॥

हिन्दी—हे भीरुस्वभाववाली रत्नकला कुष्ठ आदि अशुभ रोगों में सर्वेश्वर लौह का सेवन करना चाहिये। इसमें अनेक गुण हैं। यह सन्तान कारक, वातरोग रूपी शत्रु का नाशकर्ता एवं अकाल मृत्यु से भी बचाने वाला है।

विशेष—यह योग सचमुच सर्वेश्वर=सबका स्वामी अथवा सब योगों का स्वामी है। किन्तु इस नाम से चिकित्सा ग्रन्थों में अनेक योग देखे जाते हैं जिनके प्राय द्रव्य अलग-अलग हैं, इसके लिये गुल्म कुष्ठ वातरक्त आदि प्रकरणों को देखें ॥ ५० ॥

इति श्रीमल्लोलिम्बराजविरचिते चमत्कारचिन्तामणौ
विविधरोगप्रतीकारो नाम तृतीयो विलास ।



अथ चतुर्थो विलासः

तत्र प्रथम प्रस्तावना—

माणिक्यावलिविलसत्पदारविन्दे, सानन्दे बहुलरुजां श्रुताश्चिकित्साः ।
अल्पानां किमिति कृशे शृणोषि न त्वं, विक्रीते करिणि किमङ्कुशे विवादः ॥

व्याख्या—माणिक्यावलिविलसत्पदारविन्दे मौक्तिकमालाभिः विलसित पदमेव अरविन्द कमल यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ सानन्दे प्रसन्नमुखमुद्रे कृशे कृशोदरि ! त्वया बहुलरुजाम् अनेकरोगाणा चिकित्सा रोगापनयनपद्धतय श्रुता , त्वम् अल्पाना रुजाम् अवशिष्टस्वल्परोगाणा चिकित्सा किमिति कथङ्कार न शृणोषि न आकर्णयसि, यतो हि विक्रीते करिणि गजमूल्ये प्रदत्ते सति किमङ्कुशे विवाद स्वल्पमूल्यवति वस्तुनि अङ्कुशे निवादेन को लाभ । प्रहर्षिणीवृत्तम् ।

हिन्दी—**मणिगण जटित पायलों से शोभित चरण कमल वाली, प्रसन्न चित्त युक्त कृशोदरी ! तुमने ज्वर आदि अनेक रोगों की चिकित्सा सुनी, अब थोड़े से रोगों की चिकित्सा शेष है उसे क्यों नहीं सुनना चाहती हो, क्योंकि जब हाथी बिक गया तो अङ्कुश के मूल्य में क्या झगड़ा ।**

विशेष—**इस पद्य से यह ज्ञात होता है कि भगवती सरस्वती के प्रसाद से अविरल काव्यधारा के प्रवाह में तत्पर अश्रान्त कवि लोलिम्बराज समस्त रोगों की चिकित्सा को कह देना चाहते हैं किन्तु सुकुमारी रत्नकला थक जाने के कारण विश्राम चाहती है ॥ १ ॥**

क्षयरोगचिकित्सा—

अयि सुन्दरि सुन्दरानने रुचिरापाङ्गतरङ्गलोचने ।
नवनीतमधूपलाशनादुडुराजोऽपि भवेत्क्षयक्षयः ॥ २ ॥

व्याख्या—अयि सुन्दरि सौम्याकारे सुन्दरानने सुन्दर रुचिरम् आनन मुख यस्याः सा तत्सम्बोधने, रुचिरापाङ्गतरङ्गलोचने रुचिरौ शोभनौ यौ अपाङ्गौ नेत्रान्तौ तयोस्तरङ्गा वीचय ययोस्तादृशे लोचने नेत्रे यस्या सा तत्सम्बोधने नवनीतम् हैयङ्गवीन मधु माक्षिक उपला शर्करा त्रयाणामेतेषामशनाद् भक्षणाद् उडुराजोऽपि नक्षत्रेशस्याऽपि, राजृ दीप्तौ क्विप् , क्षयो राजयक्ष्मा तस्य क्षयो भवेद् ॥ वियोगिनीवृत्तम् ।

शर्करामधुसंयुक्त नवनीत लिहन् क्षयी ।
क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—**हे सुन्दरी प्रसन्नमुख वाली रक्तिम नेत्र प्रान्तों से सुशोभित रत्नकला !**

मक्खन, मधु और मिश्री को मिलाकर सेवन करने से चन्द्रमा का भी क्षय रोग क्षीण हो जाता है। मनुष्यों की तो बात ही क्या है।

विशेष—अनुपान के लिये मधु नवनीत अथवा मधु घृत की समान मात्रा नहीं होनी चाहिये ॥ २ २

अथ व्रणप्रतीकारमाह—

सुतनो ! सुतनोस्त्वमौषधं सकलं वेत्सि परन्तु वच्म्यहम् ।
त्रिफलाजनितः कषायकः सहितो गुग्गुलुना व्रणं जयेत् ॥ ३ ॥

व्याख्या—हे सुतनो रत्नकले ! सुतनो शोभनशरीरवतो राजकुमारादिकस्य त्व सकलम् अखिलम् औषध वेत्सि परन्तु तथापि वच्म्यह कथयामि गुग्गुलुना गुग्गुलुर्देवधूप तेन सहितः मिलित त्रिफलाजनित फलत्रिकोत्थ कषायक क्वाथ व्रणम् ईर्म जयेद् विनाशयेत्। यथाह चक्रपाणि —

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्त सरुज सशोथा ।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्ति त्रिफलारसेन ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—हे रत्नकला ! तुम सुकुमारों के सभी रोगों की ओषधि जानती हो फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ—शुद्ध गुग्गुलु के साथ त्रिफला का क्वाथ पीने से व्रण नष्ट हो जाते हैं। वियोगिनीवृत्तम् ।

विशेष—त्रिफला के क्वाथ में ४ रत्ती की मात्रा में शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर पीना चाहिये। यह एक सामान्य मात्रा का निर्देश है ॥ ३ ॥

स्थूलत्वहरो योग —

मदनज्वरकारिनामधेये शृणु सद्वेणि सुवाणि वर्णिनि त्वम् ।
प्रपिबन् समधूदकं प्रभाते गणनाथोऽपि भवेत् किलास्थिशेषः ॥ ४ ॥

व्याख्या—मदनज्वरकारिनामधेये मदनज्वर कामज्वर करोति तच्छील नामधेय नाम यस्या सा तत्सम्बुद्धौ हे रत्नकले ! सद्वेणि सत्केशपाशे सुवाणि मधुरालापवति वर्णिनि महिलाग्रगण्ये त्व शृणु, प्रभाते प्रात काले समधूदक मधुमिश्रित जल गणनाथोऽपि लम्बोदरोऽपि प्रपिबन् पान कुर्वन् सन् अस्थिशेष अस्थिमात्रावशिष्ट भवेत् किलेति योगस्य प्रसिद्धि । चक्रपाणि—

यथाह चक्रदत्ते— प्रातर्मधुयुत वारि सेवित स्थौल्यनाशनम् ।
उष्णमन्नस्य मण्डञ्च पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥

स्थौल्यरोगे पथ्यम्— श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रिय ।
हन्त्यवश्यमतिस्थौल्य यवश्यामाकभोजन ॥
अस्वप्नश्च व्यवायश्च व्यायाम चिन्तनानि च ।
स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तु क्रमेणाति प्रवर्धयेत् ॥ तत्रैव ॥

हिन्दी—कामदेव को भी कामज्वर से सताने वाली सुन्दर चोटी तथा वाणी से युक्त स्त्रियों में सर्व श्रेष्ठ रत्नकला ! यदि सब से प्राचीन स्थूलता के रोगी गणेश जी भी शहद का शर्बत बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पीने लगें तो उनकी भी हड्डियाँ शेष रह जायेंगी। मोटाई की तो बात ही क्या कहनी है। मालभारिणीवृत्तम्।

विशेष—इसका प्रयोग लाभ करता है। गणेश जी की स्थूलता दूर होने से प्राचीन रोग में भी लाभकारक है, यह सिद्ध होता है ॥ ४ ॥

पुष्टिकरो योग —

सदये सदये सरोजराजीरजसोरोजगिरौ विराजमाने।
सुभगे सुभगे कृशस्य पुंसस्तिलकोऽङ्गुष्ठकृतोऽतिपुष्टिहेतुः ॥ ५ ॥

व्याख्या—उरोज पयोधर स एव गिरि उन्नतत्वात् तस्मिन् या सरोजाना पङ्क्ति तस्या रजसा विराजमाने स्थिते, सदये सदये इत्याम्रेडितम् अर्थात् अतीव दयाशीले अथवा नत् समीचीन अय शुभावहो विधि यस्या तत्सबुद्धौ दयया सहिते सदये, सुभगे सत्कीर्ति-युक्ते सुभगे ऐश्वर्यशालिनि नृष्ठु भग यस्या तत्सबुद्धौ रत्नकले ! अङ्गुष्ठकृत कृशस्य पुस अङ्गुष्ठवत्कार्श्य गतस्यापि मानवस्य तिलक क्षुरक पुष्पविशेष पुष्टिहेतु स्वास्थ्यकृद् भवति, 'भग श्रीयोनिवीर्यच्छाज्ञानवैराग्यकीर्तिषु। माहात्म्यैश्वर्ययत्नेषु धर्मे मोक्षेऽथ ना रवौ' इति मेदिनी।

तिलकस्य गुणानाह— तिलक क्षुरक श्रीमान् पुरुपश्छिन्नपुष्पक।
तिलक कटुक पाके रसे चोष्णो रसायन ॥
कफकुष्ठकृमीन वस्तिमुखदन्तगदान् हरेत् ॥ अ० नि० ॥

हिन्दी—कमलपराग से सुशोभित उन्नत स्तनों वाली, अत्यन्त दयामयी, कीर्ति एव ऐश्वर्यशालिनी रत्नकला अगुष्ठ के समान दुबला पतला मानव भी तिलक (पुष्पविशेष) की छाल का विधिवत् सेवन करने से हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। मालभारिणीवृत्तम्।

विशेष—प्राचीन काल में स्तनों के ऊपर चन्दन, केशर, कस्तूरी आदि शीतल एव सुगन्धित पदार्थों से पत्र रचना की जाती थी। यहाँ पर कवि ने उसी का स्मरण दिलाया है ॥ ५ ॥

शोफप्रतीकारोपाय —

कान्ते मृणालवलये ललिते सुलास्ये-
त्रैलोक्यशालिनि रसालरसालचित्ते।
शोफं किरातकमहौषधयोः कषायो-
दूरीकरोति रघुनाथ इवारिवीरम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—मृणालवलये विमकटके ललिते सुन्दरि सुलास्ये नर्तनकुशले त्रैलोक्यशालिनि अतिशयशोभायुक्ते रसालरसालचित्ते रसालवद् रसाल रसभरित चित्त यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, किरात तिक्त महौषध शुण्ठी एतयो कषाय शोफ शोथ तथा दूरीकरोति यथा रघुनाथ अरिवीर रावणम् । वसन्ततिलकावृत्तम् । इति शोफप्रतीकार ।

विशेष—हे कमलनाल का कंकण धारण करने वाली रत्नकला ! चिरायता और सोंठ का क्वाथ उस प्रकार शोथ का विनाश करता है जिस प्रकार राम ने अत्यन्त वीर अपने शत्रु रावण का विनाश किया ॥ ६ ॥

वातजतृषानाशनो योग —

शृणु पद्मिनि ! पद्मिनीद्युते भुवि पद्मोपमिते सपद्मके ।
सगुडं दधि सेवितं तृषं पवमानप्रभवां नियच्छति ॥ ७ ॥

व्याख्या—हे पद्मिनीद्युते पद्मिन्या कमलिन्या द्युतिरिव द्युति यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, भुवि पृथिव्या पद्मोपमिते कमलेन सदृशे सपद्मके विकचपुण्डरीकालङ्कृते इत्थम्भूते हे पद्मिनि शृणु ! अनेन सम्बोधनेन रत्नकलाया पद्मिनीनायिकात्वमभिव्यज्यते । सगुडम् इक्षुविकारेण सहित दधि पवमानप्रभवा तृष वातजा पिपासा नियच्छति निवारयति । यथाह चक्रपाणि—

तृष्णाया पवनोत्थाया सगुड दधि शस्यते ।
रसाश्च बृंहणा शीता गुडूच्या रस एव च ॥ चक्रदत्ते ॥

प्रसङ्गवशात् पित्तजतृष्णाचिकित्सापीह समुद्ध्रियते, यथाह डल्हण —
पित्तघ्नवर्गैस्तु कृत कषाय सशर्कर क्षौद्रयुत सुशीत ।
पीतस्तृषा पित्तकृता निहन्ति क्षीर शृत वाप्यथ जीवनीयै ॥
पित्तघ्नवर्गे काकोल्यादिगण तथा उत्पलादिगण पठित । वियोगिनीवृत्तम् ।

हिन्दी—कमल के सदृश शोभा युक्त, कमल की उपमा से विभूषित कमल को धारण करने वाली हे पद्मिनी नायिका रत्नकला ! गुड़ के साथ दही का सेवन वातजन्य पिपासा को शान्त करता है ॥ ७ ॥

विषापहरणविधि —

कामकेलिचतुरे मनोहरे पीवरोरु मधुराधराधरे ।
मेघनादरजनीरसो बुधैरीरितो विषविनाशकारकः ॥ ८ ॥

व्याख्या—कामकेलिचतुरे रतिक्रीडानिपुणे मनोहरे चेतोहरे पीवरोरु पीनसक्थिमति मधुराधरे मधुर आस्वाद्यश्च य अधर त धरतीति धरा तत्सम्बुद्धौ, मेघनाद तण्डुलीयक रजनी हरिद्रा तयो रस बुधै विषनाशकारक ईरित कथित । रथोद्धतावृत्तम् ।

हिन्दी—रति-क्रीडा-कुशल मन को वश में करने वाली मांसल जांघ वाली तथा मधुर अधर से सुशोभित रत्नकला ! हल्दी का चूर्ण चौलाई के रस के साथ सेवन करने से सामान्य विष का विनाश होता है ॥ ८ ॥

वातरक्तप्रतीकारमाह—

रतिकेलिकलाकुशले ललने विमले मलयाचलतुल्यकुचे ।
अमृतव्रतती रुबुतैलयुता शमयेदनिलास्रमुदारतरम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—रतिकेलिकलाकुशले रतौ सुरते या केलय परीहासा तासु सुरतक्रीडासु या कला तासु कुशला शिक्षिता या सा तत्सम्बुद्धौ, ललने रामे विमले निर्मले मलयाचलतुल्यकुचे मलयेन चन्दनाद्रिणा समानौ स्थूलत्वेन कठिनत्वेन शीतलस्पर्शवत्त्वेन च तुल्यौ समानाकारौ कुचौ स्तनौ यस्या सा तत्सम्बुद्धौ रुबुतैलयुता एरण्डतैलेन सहिता अमृतव्रतती गुडूची लता उदारतरम् अनिलास्र प्रवृद्ध वातरक्त शमयेत् । अत्र चरकोक्त वातरक्तनिदानम्—

वायु प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावरित पथि । कृत्स्न सन्दूषयेद्रक्त तज्ज्ञेय वातशोणितम् ॥

एष योगश्चक्रपाणिनापि चक्रदत्ते समुद्धृत तद्यथा—

घृतेन वात सगुडा विबन्ध पित्त सिताढ्या मधुना कफश्च ।
वातासृगुग्र रुबुतैलमिश्रा शुण्ठ्यामवात शमयेद् गुडूची ॥

अयमेवाविकल पाठो भैषज्यरत्नावल्यामपि दृष्टिपथमायाति । तोटकवृत्तम् ।

हिन्दी—रति-क्रीडा में निपुण प्रिया स्वच्छ एव मलयाचल के सदृश शीतल सुगन्धित स्थूल तथा उन्नत स्तनों वाली रत्नकला ! रेंडी के तेल के साथ गिलोय का सेवन भीषण वातरक्त को शान्त करता है ॥ ९ ॥

विसूचिकाहरो योग —

लशुनजीरकगन्धकसैन्धवत्रिकटुरामठचूर्णमिदं समम् ।
जयति निम्बुरसेन विसूचिकां हृदयहारिविहारिणि वत्सले ॥ १० ॥

व्याख्या—विहारिणि विहरणशीले वत्सले प्रियतमे रत्नकले लशुन रसोन जीरक अजाजी सैन्धवम् सिन्धुज लवण गन्धक सौगन्धिक त्रिकटु विश्वोपकुल्यामरिचात्मक त्र्यूषण रामठ हिङ्गु लशुनादीनां समाहार· (समाहारे नपुसकम्) एतेषा सम समानभाग चूर्ण निम्बुरसेन, निम्बुकजलेन भावित हृदयहारि सुस्वादु एतच्चूर्ण विसूचिका रोगविशेष हरति । द्रुतविलम्बितवृत्तम् ।

विसूचिकास्वरूपम्—सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् सतिष्ठतेऽनिल ।
यत्राऽजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते ॥

हिन्दी—हे मनोहर विहार प्रिय रत्नकला ! लशुन, जीरा, शुद्ध गन्धक सैन्धा-नमक, सोंठ, मरिच, पीपल, हींग इन सब का समभाग चूर्ण लेकर नीबू के रस

की भावना देकर गोली बनाकर सेवन करने से विसूचिका (हैजा) का शमन होता है। यह योग अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

क्रिमिविनाशनो योग —

त्रिकटुत्रिफलात्रिवृत्कलिङ्गैः खदिरोग्रापिचुमन्दजः कषायः ।
पशुमूत्रसमन्वितो निपीतः क्रिमिकोटीरपि हन्ति हन्ति वेगात् ॥ ११ ॥

व्याख्या—त्रिकटु त्र्यूषण त्रिफला फलत्रिक त्रिवृत् त्रिभटी कलिङ्गम् इन्द्रयव खदिर रक्तसार उग्रा वचा पिचुमन्द निम्ब तत्र पशुमूत्रमजामूत्र तेन समन्वित. युक्त कषाय वेगात् क्रिमिकोटीरपि बहुमरयाकान् किंवा बहुविधान् क्रिमीन् हन्ति मारयति। अत्र द्वितीयहन्तिप्रयोग' निश्चयेन विनाशयतीति सङ्केतयति एतेनोदरस्था क्रिमय म्रियन्ते पुरीषेण सह बहिरायान्ति च । द्रुतविलम्बितवृत्तम् ।

हिन्दी—सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, निशोथ, इन्द्र-जौ, खैर की छाल, बाल बच, नीम की छाल इनका कषाय गोमूत्र के साथ सेवन करने से शीघ्र ही क्रिमियों का विनाश हो जाता है ॥ ११ ॥

मुखपाकप्रतीकारमाह—

अमृतासुमनःप्रवालदार्वीत्रिफलादीप्यकगोस्तनीकषायः ।
कवलग्रहणान्मुखस्य पाकं मधुमिश्रः शमयेदशेषमाशु ॥ १२ ॥

व्याख्या—मधुमिश्र क्षौद्रसंयुक्त अमृता गुडूची सुमन प्रवाल जातीपल्लव दार्वी दारुहरिद्रा वा अमृता गुडूची सुमन पुष्प दार्वीप्रवाल दारुहरिद्राकिसलय त्रिफला फलत्रिक दीप्यक अजमोदा गोस्तनी मृद्वीका द्रव्याणामेतेषा कषाये कवलग्रहणाद् ग्रासवन्मुखे धारणाद् मुखस्य अशेष पाकम् आशु शीघ्र शमयेत् । द्रुतविलम्बितवृत्तम् ।

हिन्दी—गुरुच के फूल, दारुहल्दी के कोमल पत्ते या गुरुच, चमेली का पल्लव, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आवला, अजवायन, मुनक्का, इनके क्वाथ में शहद मिलाकर कवलधारण करने से सभी प्रकार के मुखपाक शीघ्र शान्त हो जाते हैं।

विशेष—कवल = ग्रास का धारण, जिस प्रकार भोजन करते समय कोई भी खाद्य पदार्थ मुख में उतना ही डाला जाता है जितना इधर उधर हिलाया जा सके उसी प्रकार औषध द्रव्यों से साधित क्वाथ को मुख में रखकर हिलाते रहते हैं कुछ देर बाद थूक देते हैं इसके साथ मुखगत दोष भी लार के रूप में निकल जाते हैं ॥ १२ ॥

अथ प्रमेहप्रतीकारमाह—

अमृतास्वरसो निषेवितः सन् सकलं मेहमपाचरीकरीति ।
विपरीतरते रते नितान्तं यमिनां धैर्यमिवाङ्गनाकटाक्षः ॥ १३ ॥

व्याख्या—हे विपरीतरते पुरुषायितप्रिये रत्नकले यथा रते सुरते अङ्गनाकटाक्ष स्त्रिय हावभावादि यमिना नियमवता (अपि) धैर्य धीरता नितान्तम् अत्यन्तम् अपाचरीकरीति दूरीकरोति तथा अमृतास्वरस निषेवित प्रयुक्त सन् सकल सर्वविध मेह प्रमेहमिति पूर्वेणान्वय । यथोक्तम्-गुडूच्या स्वरस पेयो मधुना सर्वमेहजित् । वियोगिनीवृत्तम् ।

हिन्दी—हे विपरीतरतिप्रिय रत्नकला ! जिस प्रकार मैथुन काल में नायिका के कटाक्ष बड़े बड़े संयमी पुरुषों को धैर्यच्युत कर देते हैं उसी प्रकार गुडूची के रस के सेवन से कठिन प्रमेह दूर हो जाते हैं ॥ १३ ॥

हृद्रोगेषु अर्जुनप्रयोग —

ये सन्ति केचिद् हृदयस्य रोगाः सर्वेऽपि ते यान्ति शमं त्रिरात्रात् ।
चेत् पार्थकल्कं स्वरसं प्रसिद्धं सर्पिर्निषेवेत नरः सपथ्यः ॥ १४ ॥

व्याख्या—चेद् यदि सपथ्य पथ्येन सहित हिताहारविहारादिभि युक्त नर पुमान् पार्थकल्क पृथाया अपत्य पुमान् पार्थ अर्जुन ककुभ वृक्षविशेष तस्य त्वचया सिद्ध कल्क किं वा स्वरसन अथवा एतन्नाम्ना प्रसिद्ध सर्पि हृद्रोगापनयने प्रख्यात घृत निषेवेत प्रयुञ्जीत तर्हि ये केचित् समस्ता हृदयस्य हृत्सम्बन्धिनो रोगा॰ सन्ति ते सर्वेऽपि त्रिरात्राद् त्रयाणा रात्रीणा समूह त्रिरात्र तस्मात् दिनत्रयस्य सेवनात् शम शान्ति यान्ति । यथाह चक्रपाणि चक्रदत्ते—

'पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्ध शस्तं घृत सर्वहृदामयेषु ।' इति अर्जुनघृतम् । एष योग॰ भैषज्यरत्नावल्यामपि दृश्यते हृद्रोगेषु अर्जुनस्य बहुविधा प्रयोगा प्रसिद्धा ग्रन्थान्तरेषु समुपलभ्यन्ते । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—यदि हित आहार-विहार करने वाला मनुष्य अर्जुन की छाल का कल्क-चटनी उसी का स्वरस अथवा अर्जुन घृत का सेवन करे तो जितने भी हृदय-सम्बन्धी रोग हैं वे सब तीन दिन में शान्त हो जाते हैं ।

विशेष—यद्यपि ग्रन्थकार ने अर्जुन की छाल का कल्क, स्वरस और घृत का अलग अलग प्रयोग लिखा है किन्तु घृत-निर्माण में भी इन तीनों की एक साथ आवश्यकता पड़ती है जैसा कि चक्रपाणि ने लिखा है-चिकित्सा-ग्रन्थों में हृदय रोग की शान्ति के लिये विविध प्रकार से अर्जुन का प्रयोग देखा जाता है, अर्जुन-सिद्ध क्षीर, अर्जुन चूर्ण, अर्जुनादि क्वाथ, अर्जुनाद्यवलेह, अर्जुनारिष्ट आदि-आदि ॥ १४ ॥

पामाप्रतीकारक —

रसद्विजीरद्विनिशामरीचसिन्दूरलेलीतमनःशिलानाम् ।
घृतेन युक्तैरपयाति पामा विपद्यथा शङ्करमन्त्रपाठैः ॥ १५ ॥

व्याख्या—रस शिवबीज द्विजीरौ शुक्लकृष्णभेदात् द्वौ जीरकौ द्विनिशे हरिद्रा दारुहरिद्रा च मरीचम् कृपण सिन्दूर नागसम्भव लेलीत गन्धक मन शिला कुनटी चूर्णीकृतैर्घृतेन युक्तैराज्यसयुक्तैरेभिर्द्रव्यैः पामा कच्छू तथा अपयाति यथा शङ्करमन्त्रपाठैः विपद् कष्ट (याति)। उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सफेद जीरा, काला जीरा, हल्दी, दारुहल्दी, मरिच, शुद्ध सिन्दूर, शुद्ध मैनशिल इनको पीसकर गाय के घी में मिलाकर लगाने से खुजली रोग उस प्रकार दूर हो जाता है जिस प्रकार भगवान् शकर की आराधना से विपत्ति ।

विशेष—पारद, गन्धक, सिन्दूर तथा मैनशिल इनका शोधन करके ही उपयोग करना चाहिये अन्यथा ये स्वय भी रोगों को उत्पन्न कर देते हैं । शुद्ध करने के बाद पहिले पारद गन्धक की कज्जली बनाकर तब शेष द्रव्य डालें ॥ १५ ॥

निदाघोपचारमाह—

रमारम्याकारे चतुरवचने चारुलपने
तडिद्वल्लीतुल्ये करतललसन्नीलनलिने ।
निदाघः सञ्जातः किमु तव सरोजन्मकदली-
दलैः क्लृप्ते तल्पे स्वपिहि यदि सौरभ्यभरिते ॥ १६ ॥

व्याख्या—रमारम्याकारे रमा लक्ष्मीस्तद्वद् रम्य· स्वभावसुन्दर , आकार आकृति यस्या सा तत्सम्बोधने, चतुरवचने सम्भाषणकुशले चारुलपने मधुरभाषिणि, तडिद्वल्लीतुल्ये विद्युल्लतेव रम्ये करतललसन्नीलनलिने करस्य तलोऽनूर्ध्वभागस्तस्मिन् लसत् शोभमान नीलनलिनम् इन्दीवर यस्या सा तत्सम्बुद्धौ तव निदाघ घर्मे सञ्जात किम् ? इति प्रश्ने यदि सञ्जात तर्हि सरोजन्मकदलीदलै क्लृप्ते सरोजन्मन पङ्कजस्य कदल्या· रम्भायाश्च दलानि पत्राणि तैर्विरचिते सौरभ्यभरिते सुवासिते तल्पे शय्यायां स्वपिहि शयन कुरु । शिखरिणीवृत्तम् ।

हिन्दी—आकार में लक्ष्मी के सदृश, सम्भाषण में प्रवीण, मधुर वाणी वाली, विद्युत् लता के समान चञ्चल, हाथ में नीलकमल को धारण की हुई रत्नकला तुम्हें लू लग गई है क्या ? यदि हाँ तो कमल और केले के पत्तों वाली सुवासित शय्या में सो जाओ ॥ १६ ॥

दुर्नामादिरोगाणा चिकित्सामाह—

पथ्यातिलारुष्करकैः समांशैर्गुडेन युक्तैः खलु मोदकः स्यात् ।
दुर्नामपाण्डुज्वरकुष्ठकासश्वासान् जयेत् प्लीहयुतस्य पथ्यः ॥ १७ ॥

व्याख्या—पथ्या हरीतकी तिला कृष्णतिला अरुर्व्रणं करोति अरुष्करको भल्लातक एते समांशाः समानभागैः गुडेन युक्तः खलु निश्चये मोदको लड्डुकः स्यात्, अस्य प्रयोगः दुर्नामा अर्शः पाण्डु ज्वर कुष्ठ कास श्वास च सर्वानेतान् रोगान् जयेत् एष मोदकः प्लीहयुतस्य रोगिणः पथ्यः शास्त्रेषु प्रदिष्टः । इन्द्रवज्रावृत्तम् । गुडपाकपरीक्षा—

सुखमर्दः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः । पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥

हिन्दी—हरड़, तिल और शुद्ध भिलावा इन तीनों को समान भाग लेकर इन सब का दूना गुड लेकर गुडपाक-विधि से पकाकर लड्डू बना लें। इसके सेवन से बवासीर, पाण्डु, ज्वर, सामान्य कुष्ठ, कास तथा श्वास का शमन होता है। यह मोदक प्लीह रोगी के लिये भी हितकर है ॥ १७ ॥

अथ गण्डमालाप्रतीकारमाह—

भल्लातकासीसहुताशदन्तीमूलैर्गुडस्नुग्रविदुग्धदिग्धैः ।
प्रलेपितैर्गच्छति गण्डमाला समीरपूरैरिव मेघमाला ॥ १८ ॥

व्याख्या—भल्लातको वीरवृक्षः कासीसम् उपधातुविशेषः हुताशश्चित्रकः दन्तीमूलं, एरण्डजटा एभिश्चतुर्भिः कीदृशैः गुडस्नुग्रविदुग्धदिग्धैः गुडेनेक्षुविकारेण स्नुहीदुग्धेन, अर्कदुग्धेन च दिग्धैः स्फीतैः प्रलेपितैः लिप्तैः गण्डमाला तथा गच्छति यथा समीरपूरैः वायुवेगैः मेघमाला गच्छति लुप्ता भवति । एषः गण्डमालायाः ग्रन्थिं विदार्य तच्छान्तिं करोतीति व्यवहारः, योगोऽयं कतिपयद्रव्यविकल्पनेन भैषज्यरत्नावल्यां परिदृश्यते, तद्यथा—

दन्ती चित्रकमूलत्वक् स्नुग्रर्कपयसी गुडः । भल्लातकास्थि काशीशं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि ॥

इममेव योगं चक्रपाणिः चक्रदत्तेऽप्याह । उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—भिलावा, हीरा कासीस, चीता की छाल, जमालगोटा की जड़, रेंड़ की जड़ इन चार वस्तुओं के चूर्ण को गुड सेहुण्ड का दूध मदार का दूध में मिलाकर लेप करने से गण्डमाला उस प्रकार नष्ट हो जाती है जिस प्रकार वायुवेग से मेघ नष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥

अम्लपित्तचिकित्सामाह—

भूनिम्बनिम्बत्रिफलाकलिङ्गवासामृतापर्पटभृङ्गराजैः ।
क्वाथः समेतो मधुना निपीतो विनाशयेदुल्वणमम्लपित्तम् ॥ १९ ॥

व्याख्या—भूनिम्बः चिरतिक्तः निम्बः पिचुमर्दः त्रिफला फलत्रिकं कलिङ्गः कुटजः वासा आटरूषकः अमृता गुडूची पर्पटो वरतिक्तः भृङ्गराजः भृङ्गः मधुना समेतः क्षौद्रेण मिलितः एतेषां क्वाथः निपीतः सन्, उल्वणम्प्रवृद्धम् अम्लपित्तं विनाशयेत् । यथाह चक्रपाणिश्चक्रदत्ते—

वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः । त्रिफलाकुलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥

हिन्दी—चिरायता, नीम, परवल, मोथा, आँवला, कुटज की छाल, अडूसा, गिलोय, पित्तपापड़ा और भृङ्गराज इनका क्वाथ शहद मिलाकर पीने से बढ़ा हुआ अम्लपित्त भी शान्त हो जाता है, इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १९ ॥

अथ वातरोगप्रतीकारमाह—

चूर्णाः कषाया गुटिका घृतानि तैलानि मार्गेण नियोजितानि ।
विलासिनां वातविनाशनाय विलासिनीनां परिरम्भणानि ॥ २० ॥

व्याख्या—वातघ्नौषधिनिर्मितानि चूर्णानि कषाया, गुटिका वटिका वातघ्नैः सिद्धानि घृतानि तैलानि च मार्गेण यथाविधि नियोजितानि प्रयुक्तानि वातरोगहराणि भवन्ति किन्तु विलासिनां कामुकानां वातविनाशनाय विलासिनीनां युवतीनां परिरम्भणानि गाढालिङ्गनानि प्रशस्तानीति ग्रन्थकारस्याशयः । चूर्णशब्दस्य प्रयोग पुनरुक्तयो भवति । उपजातिवृत्तम् ।

हिन्दी—वातनाशक ओषधियों से निर्मित चूर्ण, क्वाथ, गोली अथवा उन्हीं औषधियों से सिद्ध किये हुए घी और तेल सामान्य वातज रोगों को शान्त करते हैं किन्तु कामीजनों की रोगशान्ति के लिये कामिनियों का आलिङ्गन ही वातरोग नाशक होता है । ऐसा ग्रन्थकार का मत है ॥ २० ॥

पित्तप्रतीकारमाह—

अमृतममृतजं निराकरोति घृतमुपलाकलितं करालपित्तम् ।
तरुण इव नितम्बिनीनितम्बाम्बरमतनुज्वरजर्जरीकृताङ्गः ॥ २१ ॥

व्याख्या—अमृतममृतजं अमृताज्जातम् अमृतजं गुडूची किंवा अमृतजं गुडूचीप्रभवं घृतं जलं यद्वा अमृतं दुग्धं तज्जं घृतम् उपलाकलितं शर्करया मिश्रितं करालपित्तम् उल्बणं पित्तं निराकरोति दूरीकरोति प्रशमयतीत्यर्थः, यथा अतनुज्वरजर्जरीकृताङ्गः अतनुः कामः तज्जनितेन ज्वरेण जर्जरीकृतम् अङ्गं यस्य तथाभूतः तरुणः युवा पुरुषः नितम्बिनी कामिनी तस्याः नितम्बाम्बरं शाटिकां निराकरोतीत्यभिप्रायः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

हिन्दी—मिश्री मिला हुआ गिलोय का स्वरस अथवा घी बढ़े हुए पित्त दोष को उस प्रकार हटाता है जिस प्रकार कामवासना से प्रेरित पुरुष कामिनी के अधोवस्त्र को । अर्थात् यह शीघ्र ही पित्त का शमन करता है ॥ २१ ॥

कफप्रतीकारमाह—

मनस्विनी सुभ्रु सुचञ्चलाक्षि घनस्तनश्रोणितटाभिरामे ।
कफप्रकोपस्य शमाय योग्यो योगो यथाऽयं न तथान्ययोगः ॥२२॥

व्याख्या—हे सुभ्रु शोभनभ्रूलतायुक्ते सुचञ्चलाक्षि चपलनयने घनस्तनश्रोणितटाभिरामे निबिडकुचश्रोणिकटिप्रदेशेन रमणीये रलकले ! कफप्रकोपस्य प्रवृद्धस्य श्लेष्मदोषस्य शमाय

शान्त्यै योग्य समर्थ यथाय मनस्विनी स्त्रीसेवनरूप. योगोऽस्ति तथा तद्विध अन्यो योगो नास्तीति । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—हे सुन्दरओष्ठ, चञ्चलनेत्र, रमणीयस्तन तथा जांघों से शोभित रत्नकन्या ! बढ़े हुए कफ दोष की शान्ति के लिये जितना लाभप्रद मनस्विनी स्त्री का सेवन है उतना दूसरा कोई योग नहीं है ॥ २२ ॥

अपरो योग —

कफाद् भवति भो भीरु ! छिन्नाक्वाथो मधूदर. ।
अस्यार्थो लभ्यते नैव तन्वङ्गि तव मध्यवत् ॥ २३ ॥

व्याख्या—भो भीरु ! भयशीले मधूदर मधु क्षौद्रम् उदरे यस्य स छिन्ना गुडूची तस्या क्वाथ कषाय कफाद् कफविनाशकृत् भवति । कफ श्लेष्माणम् अत्तीति कफाद । हे तन्वङ्गि कृशोदरि तव मध्यवत् कटिप्रदेशवद् अस्य अयमुपरिलिखितोऽर्थो नैव लभ्यते यथा वस्त्राऽऽवृतस्तव कटिप्रदेश । यथातव कटिवस्त्रापनयनेन ममाधिकारिणं कटि प्रत्यक्षो भवति नान्यस्य तथैवाधिकारिण पण्डितस्याप्यस्यार्थ प्रत्यक्षो भवतीति भाव । कर्तृगुप्त । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—हे डरपोक स्वभावशाली कृशोदरी ! मधुमिश्रित गिलोय का क्वाथ कफ नाशक होता है । इस पद्य का अर्थ साधारण रूप से इस प्रकार प्रतीत नहीं होता जैसे साड़ी से ढका हुआ तुम्हारा मध्यभाग (कमर)। अर्थात् इस पद्य में कफाद् यह प्रथमा विभक्ति का रूप है, पञ्चमी का नहीं ॥ २२ ॥

ऊरुस्तम्भचिकित्साविधि —

पुनर्नवानागरदारुपथ्या-भल्लातकच्छिन्नरुहाकषायः ।
दशाढ्यमिश्रः परिपेय ऊरुस्तम्भेऽथवा मूत्रपुरप्रयोगः ॥ २४ ॥

व्याख्या—पुनर्नवा शोथघ्नी नागर शुण्ठी दारु देवदारु पथ्या हरीतकी भल्लातक अग्निमुख छिन्नरुहा गुडूची दशाढ्यमिश्र पञ्चमूलोभयमहित क्वाथ ऊरुस्तम्भे परिपेय सेव्य अथवा मूत्र गोमूत्र पुर गुग्गुलु एतयो प्रयोग करणीय । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् । अयमाशय गोमूत्रेण सह गुग्गुलु सेवनीय इति । यथाह—

चक्रपाणि चक्रदत्ते—भल्लातकामृताशुण्ठी दारुपथ्यापुनर्नवा ।
पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिवारणा ॥

हिन्दी—पुनर्नवा, सोंठ, दारुहल्दी, हरड, भिलावा, गुरुच, दशमूल इनका क्वाथ ऊरुस्तम्भ में पीना चाहिये अथवा गोमूत्र के साथ शुद्ध गुग्गुलु का प्रयोग करना चाहिये ॥ २४ ॥

वान्तिप्रतीकारमाह—

इभचन्दनलाजकोलमज्जा-ललनैलाब्दलवंगपिप्पलीनाम् ।
रजसा समधूपलेन वान्तिः कफपित्तानिलजापि शान्तिमेति ॥२५॥

व्याख्या—इभ नागकेसर चन्दन रक्तचन्दन लाजा भृष्टशालय कोलमज्जा-बदरमज्जा एला त्रुटि अब्द मुस्ता लवङ्ग देवकुसुम पिप्पली कणा एतेषां समधूपलेन मधुमिश्रित-शर्करया युक्तेन रजसा चूर्णेन कफपित्तानिलजापि वान्ति वमनं शान्तिमेति प्रशम याति। किम्पुन साधारणा वान्ति । मालभारिणीवृत्तम् ।

हिन्दी—नागकेसर, लालचन्दन, लाजा (खील) का चूर्ण, बेर की गुठली, आम की गुठली, इलायची, नागरमोथा, लौंग, पिप्पली इनका चूर्ण मिश्री और मधु के साथ मिलाकर देने से सन्निपातज वमन भी शान्त हो जाते हैं। साधारण की तो बात ही क्या है ।

विशेष—गर्भिणी स्त्रियों को भी वमन हुआ करता है किन्तु वहाँ इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ पाण्डुरोग-प्रतीकार.—

अयश्चूर्णतुल्यं वराव्योषवेल्ला-ग्निमुस्तारजःक्षौद्रतक्राम्बुकाज्यैः ।
प्रयुक्तं जयेत् कामलाकुष्ठहृद्दृक्-प्रमेहार्शसां नाशनम्पाण्डुरोगम् ॥२६॥

व्याख्या—वरा त्रिफला व्योष त्रिकटु वेल्ल विडङ्ग अग्नि चित्रक मुस्ता मुस्तक समेषामेतेषा रज क्षोद अयश्चूर्णतुल्य लौहभस्मसमनान क्षौद्रतक्राम्बुकाज्यै प्रयुक्त क्षौद्रेण मधुना तक्रेण उदश्विता अम्बुना गोमूत्रेण घृतेन वा सेवित पाण्डुरोग जयेद् विनाशयेत् । कामलाकुष्ठहृद्दृक्प्रमेहार्शसा नाशन मतम् । एष योग 'नवायसलौह' नाम्ना प्रथितो ग्रन्थान्तरेषु । भुजङ्गप्रयातम् ।

नवायसलौहम्—त्र्यूषण त्रिफलामुस्तविडङ्गचित्रका समा ।
नवायोरजसोभागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ।
भक्षयेत् पाण्डुहृद्रोग-कुष्ठार्शं कामलापहम् ॥ चक्रदत्ते ॥

हिन्दी—हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मरिच, पीपल, वा यविडंग, चीता की छाल, नागरमोथा इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। इन सब के बराबर लौह भस्म मिलाकर रख लें, इसका सेवन पाण्डुरोग, कामला, कुष्ठ, हृदयरोग, नेत्र रोग, प्रमेह, बवासीर का विनाश करता है। इसका अनुपान-शहद, मठा, गोमूत्र अथवा घी है ।

विशेष—अन्य चिकित्सा ग्रन्थों में यह योग 'नवायसलौह' नाम से प्रसिद्ध है। चक्रपाणि द्वारा स्वीकृत पाठ ऊपर व्याख्या में उद्धृत है ॥ २६ ॥

अश्मरीनाशनोपाय —

अयि निधुवनशीले चञ्चले चञ्चलाभे-
बकुलमुकुलमालाशालिकण्ठप्रदेशे ।
रुचिरचरणयुग्माम्भोजगुञ्जद्द्विरेफे
बहलदलकषायः क्षौद्रयुक्तोऽश्मरीघ्नः ॥ २७ ॥

व्याख्या—अयीति सम्बोधनम्, निधुवनशीले सुरताभ्यासवति, चञ्चलेऽस्थिरे चञ्चलाभे विद्युन्निभे बकुलमुकुलमालाशालिकण्ठप्रदेशे मधुगन्धकुड्मलहारशोभिकन्धरे रुचिरचरणयुग्माम्भोजगुञ्जद्द्विरेफे मनोहरपादयुगलपङ्कजशब्दायमानभ्रमरे बहलदलं मधुशिग्रु तस्य मधुयुक्त क्षौद्रमिश्रित कषाय क्वाथ अश्मरीघ्न भवति । मूत्रन्तु मूत्रकृच्छ्र स्यान्मूत्ररोधोऽश्मरी च सा । मालिनीवृत्तम् ।

हिन्दी—हे मैथुनाभिलाषिणी चञ्चल स्वभाव वाली बिजली की भाँति कान्ति वाली, गले में मौलसिरी की माला धारण करने वाली जिसके रमणीय चरणकमलों में कमल के समान सुगन्धि के कारण भौंरे गूंज रहे हों ऐसी रत्नकला! लाल सहजन की छाल का क्वाथ मधु मिलाकर सेवन करने से अश्मरी रोग की शान्ति होती है ॥ २७ ॥

परिणामशूलहरो योग —

शिशिरकिरणजिन्मुखारविन्दे पृथुलकलापिकलापकेशपाशे ।
शमयति परिणामक सखण्डं समधु रजः कणलोहचेतकीनाम् ॥ २८ ॥

व्याख्या—शिशिरकिरण शशाङ्क त जयतीति जिद् इत्थभूत मुखारविन्द मुखकमल यस्या सा तत्सम्बुद्धौ पृथुलकलापिकलापकेशपाशे पृथुलकलापी मयूर तस्य कलाप इव केशपाश कचसमूहो यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, तद्वत् कणलोहचेतकीना रज- कणा पिप्पली लोहरजो लोहभस्म चेतकी हरीतकीभेद एतेषा चूर्ण समधु क्षौद्रसहित सखण्ड शर्करासहितञ्च परिणामकम् एतन्नामक शूल शमयति विनाशयतीत्यर्थ । तन्निदान यथा—भुक्ते जीर्यति यच्छूल तदेव परिणामजम् ।

भैषज्यरत्नावल्याम्—कृष्णाभयालोहचूर्णं लिह्यात् समधुशर्करम् ।
परिणामभव शूल सद्यो हन्ति सुदारुणम् ॥

चक्रपाणिनाप्येष योग चक्रदत्ते निबद्ध किन्तु तत्रानुपानभेद कृत ।

हिन्दी—हे चन्द्रमा से भी सुरूप मुखकमल तथा मयूर के केशपाश से भी अभिराम केशों वाली रत्नकला! पिप्पली, चेतकी नामक हरड़ का चूर्ण और लोहभस्म इन तीनों को मिलाकर मधु और मिश्री के साथ सेवन करने से परिणाम शूल का शमन होता है। यह शूल भोजन के पचने पर आरम्भ होता है, अतएव इसको परिणामशूल कहते हैं ॥ २८ ॥

अन्तर्विद्रधिचिकित्सामाह—

शिग्रुरुबुवरुणैः सपिप्पलैर्यामिनीद्वययुतैः कपायकः।
वोलचूर्णसहितोऽन्तरुत्थितं विद्रधिं प्रशमयेदसंशयम् ॥ २९ ॥

व्याख्या—शिग्रु मधुशिग्रु रुबु एरण्ड वरुण तिक्तशाक एभिर्युतै सपिप्पलै कणाभि सहितै यामिनीद्वययुतै हरिद्रादारुहरिद्राभ्यां मिलितै तथा वोलचूर्णसहित गन्धरसमिश्रित कपायक काथ अन्तरुत्थितम् अन्तर्जात विद्रधिम् असशय नि सन्देह प्रशमयेत्। रथोद्धतावृत्तम्।

हिन्दी—लाल सहजन, रेंड की जड़, वरुण, पिप्पली, हल्दी, दारुहल्दी और वोलचूर्ण इनका क्काथ नि सन्देह भीतर के अंगों में उत्पन्न विद्रधि = फोड़ा को शान्त कर देता है।

विशेष—यह क्काथ रक्तशोधक होने के कारण प्रारम्भ में ही सेवन करने पर विद्रधि (फोडा) को वैठा देता है ॥ २९ ॥

अथ भ्रमप्रतीकार —

मलयानिलकल्लोल-लसत्परिमलानने ।
दुरालभाकषायेण सघृतेन भ्रमो व्रजेत् ॥ ३० ॥

व्याख्या—मलयानिलकल्लोललसत्परिमलानने दक्षिणानिलतरङ्गै लसद् विलसद् यत परिमल तद्वद् आनन मुख यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, सघृतेन दुरालभाक्काथेन साज्यदु स्पर्शाकषायेण भ्रमो रोगविशेषो व्रजेत् नश्येत्। अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—हे मलयाचल की सुगन्धित वायु की लहरों से सुशोभित मुखवाली रत्नकला ! घृत-मिश्रित दुरालभा क्काथ से भ्रम = चक्कर का आना शान्त हो जाता है ॥ ३० ॥

दारुणाऽऽख्यशिरोरोगहरो लेप —

द्राक्षा पथ्या वृषः कण्ट-गिरिकर्णसमन्वितः।
रसालास्थिशिवाचूर्णं पूर्णं नीरेण सत्वरम् ॥
प्रलेपैः सप्तभिर्मूर्ध्नो दारुणं दारुणं जयेत् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—द्राक्षा गोस्तनी पथ्या हरीतकी वृष आटरूप कण्ट गोक्षुर गिरिकर्ण अश्वखुर रसालास्थि रसालमज्जा शिवाचूर्णं आमलकी चूर्णम् पूर्णं नीरेण वारिणा पिष्ठा सप्तभि प्रलेपै मूर्ध्न शिरस दारण भयावह दारुणम् एतन्नामक रोगविशेष सत्वर शीघ्र जयेत्। अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—मुनक्का, हरड़, अडूसा, गोखरू, घोड़ा का खुर, आम की गुठली,

आंवला, इनके चूर्ण को पानी से पीसकर शिर में लगाने से भीषण दारुणक नामक शिरोरोग शान्त हो जाता है ॥ ३१ ॥

श्वित्रनाशनो योग —

राजवृक्षत्वचः क्वाथः सोमराजिरजोऽन्वितः ।
गुडेन सहितः सेव्यः श्वित्रक्षत्रभृगूद्वहः ॥ ३२ ॥

व्याख्या—सोमराजिरजोऽन्वित वाकुचीचूर्णसंयुक्त राजवृक्षत्वच आरग्वधत्वच क्वाथ कषायो गुडेन इक्षुविकारेण सहित सेव्य । एष योग श्वित्रक्षत्रभृगूद्वह श्वित्रकुष्ठ एव क्षत्रियवंश तस्य विनाशाय परशुराम (इव नाशक) अस्ति । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—बाकुची के चूर्ण के साथ अमलतास के छिलके का क्वाथ बनाकर उसमें गुड मिलाकर सेवन करने से श्वेत कुष्ठ का नाश हो जाता है । अर्थात् यह योग श्वेत कुष्ठ रूपी क्षत्रिय वंश के विनाश करने के लिये परशुराम है ॥ ३२ ॥

भगन्दरहरो योग —

किमुपैति बुधो देवो देवदत्तद्विपं किमु ।
लेपः श्वास्थ्नां खराम्भोभिः किं न हन्ति भगन्दरम् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—बुध विद्वान् देव सुर वा देवदत्तद्विप देवदत्त शरा तस्य द्विट् अग्नि स एव चित्रक तम् किमु व्यर्थम् उपैति किम् इति प्रश्ने, अर्थात्तद् व्यर्थ तैरय सेवनीय खराम्भोभि गर्दभमूत्रै श्वास्थ्ना कुक्कुरास्थ्ना लेप भगन्दर किं न हन्ति, अपि तु हन्त्येव । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—विद्वान् अथवा देवता भगन्दर की शान्ति के लिये चित्रक का प्रयोग क्यों करते हैं ? इसकी शान्ति के लिये कुत्ते की हड्डी को गधा के मूत्र में घिसकर लगाना चाहिये । मालूम होता है कि इसकी अपवित्रता को देखकर ही प्रथम पक्ति का योग उन्होंने अपनाया है ॥ ३३ ॥

हिक्कानाशनो योग —

कणानागरधात्रीणां रजसा समधूपलम् ।
नस्येन विश्वगुडयोर्हिक्का नश्यति तत्क्षणात् ॥ ३४ ॥

व्याख्या—समधूपल मधुना क्षौद्रेण उपलया शर्करया च सहित, कणानागरधात्रीणा पिप्पलीशुण्ठीशिवानां रजसा चूर्णेन हिक्का विश्वगुडयो विश्व शुण्ठी गुड इक्षुविकार एतयो नस्येन नावनेन तत्क्षणात् त्वरितमेव हिक्का नश्यति । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—पिप्पली, सोंठ, आंवला इनका चूर्ण मिश्री और मधु के साथ सेवन करने से अथवा सोंठ और गुड का नस्य लेने से शीघ्र ही हिक्का रोग शान्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

अग्निमान्द्यप्रतीकारमाह—

सैन्धवार्द्रभुजो रोगं भस्मीकुर्यान्न संशयः।
अत्र कर्तृपदं ज्ञातुं दत्तं कल्पचतुष्टयम् ॥ ३५ ॥

व्याख्या—सैन्धवार्द्रभुज सैन्धवेन लवणविशेषेण सह आर्द्रक भक्षयतीति भुक तस्य र अग्नि अग पर्वत पाषाणम् अपि भस्मीकुर्यात् विदहेत् अत्र सशय सन्देहो नास्ति। अत्रास्मिन् पद्ये कर्तृपद ज्ञातु बोद्धु कल्पचतुष्टय दत्तम्। एतावत् कालपर्यन्तमपि अत्र कः कर्ता इत्युत्तरणार्थम्, कर्तृगुप्तस्योदाहरणम्। अनुष्टुप्छन्द। अन्यत्राप्यस्य योगस्य प्रशस्तिः सुलभा यथा—

भोजनाग्रे सदा पथ्य लवणार्द्रकभक्षणम्। वह्निसन्दीपन रुच्य जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥

हिन्दी—सेन्धानमक और अदरख मिलाकर जो प्रतिदिन भोजन के पहिले खाया करता है उसकी पाचकाग्नि पहाड़ों को भी पचा डालती है भोजन की तो बात ही क्या है। यह कर्ता गुप्त पद्य है, अत. कवि कहता है इसमें कर्ता ढूंढने के लिये चार युगों का समय दिया गया है ॥ ३५ ॥

शोकप्रतीकारमाह—

द्विपतां मम सन्नितम्बबिम्बे मधु हृच्छोकमपाकरोतु सद्यः।
सुहृदां तव सद्विलासलास्ये मधु हृच्छोकमपाकरोतु सद्यः ॥ ३६ ॥

व्याख्या—हे सन्नितम्बबिम्बे शोभननितम्बप्रदेशे रत्नकले मम द्विपता मम शत्रूणां सद्य तत्क्षण हृच्छोक मानसिक दु ख मधु मद्यम् अपाकरोतु दूरीकरोतु। हे विलासलास्ये विलासादिकमेव लास्य नृत्य यस्या सा तत्सम्बुद्धौ, तव सुहृदा त्वन्मित्राणा हृच्छोक स-मधु अधरामृतम् अपाकरोतु दूरीकरोतु। मालभारिणीवृत्तम्। मद्यविषये प्राचा मतम्—

मद्यप्रयोग कुर्वन्ति शूद्रादिषु महार्तिषु। द्विजैस्त्रिभिस्तु न ग्राह्य यद्यप्युज्जीवयेन्मृतम् ॥

हिन्दी—हे रत्नकला मेरे शत्रुओं के हृदयशोक को मद्य दूर करे और तुम्हारे मित्रों के हृदय शोक को तुम्हारा अधरामृत दूर करे ॥ ३६ ॥

कवे आनन्दाभिव्यक्ति—

देशे देशे दृश्यते सिन्धुतीरं तीरे तीरे वञ्जुलानां निकुञ्जः।
कुञ्जे कुञ्जे सुभ्रुवां सीधुपानं पाने पाने वर्तते सर्वलोकः ॥ ३७ ॥

व्याख्या—देशे देशे सर्वत्र सिन्धुतीर नदीना तट दृश्यते तीरे तीरे सर्वस्मिन् तटप्रदेशे वञ्जुलानां वेतसा निकुञ्ज कुञ्ज, कुञ्जे कुञ्जे सर्वत्र लतापिहितोदरे सुभ्रुवा कामिनीनां सीधुपान मद्यरसास्वाद', पाने पाने मद्यपाने सर्वो लोक मत्तो भवति। शालिनीवृत्तम्।

हिन्दी—इस देश में सब जगह नदियों के तट हैं, सभी तटों में बेत की लताओं

की क्यारियां हैं, सभी में विलासिनियां मद्यपान में रत हैं, उनके साथ नायक भी मद्य पी-पी कर मदमत्त हो रहे हैं ॥ ३७ ॥

बहिर्लापिका प्रस्तौति कवि —

किमु पिवति समूहः शोकभाजां जनानां
निपतति युवतीनां कामिनां कः स्तनेषु ।
व्यथयति सुरते कः कैरवाक्षीं नवोढां
स्मर सुहृदि वसन्ते जायते कः समृद्धः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—शोकभाजा जनानां दु खतप्ताना पुंसा समूह समाज किमु पिवति ? मधु, युवतीना नवोढाना स्तनेषु कामिना कामुकाना क, पतति ? कर सुरते निधुवनावसरे नवोढाम् उद्यद्यौवना कैरवाक्षीं कमललोचनां क व्यथयति पीडयति ? अदय , स्मर विचारय सुहृदि वसन्ते मित्रवत् प्रिये मधुमासे क समृद्ध. सम्पन्न. जायते ? मधुकरोदय । मालिनीवृत्तम् ।

हिन्दी—दु ख में डूबे हुए लोगों का समूह क्या पीता है ? मधु, युवतियों के स्तनों पर कामी पुरुषों का क्या पड़ता है ? करः (हाथ), मैथुन के समय नव॰ युवती कमलनयनियों को कौन कष्ट देता है ? अदयः (निर्दयी) याद करो प्रिय वसन्त में कौन समृद्धिशाली होता है ? (सब प्रश्नों के उत्तरों को मिलाकर चौथे पाद का उत्तर है) 'मधुकरोदयः' । भौंरों का समूह ।

विशेष—वहिर्लापिका के पद्य में प्रश्नमात्र होता है उसका उत्तर वाहर से ढूंढना होता है । इसके ठीक विपरीत अन्तर्लापिका होती है ॥ ३८ ॥

शुण्ठीकषायमाह—

कीलालं विश्वजं यः प्रपिबति पुरुषस्तस्य वक्त्रे रुचिः स्या-
न्नैर्मल्यं चित्तदृष्ट्योर्जठरजठररुक्पीनसश्वासकासाः ।
नश्यन्ति क्षुत्प्रबोधो द्युतिरपि वपुषो जायते मञ्जुघोषो
भूलोके मञ्जुघोषे सुदति मम परं विस्मयो वर्ततेऽत्र ॥ ३९ ॥

व्याख्या—य' स्वस्थोऽस्वस्थो वा पुरुष विश्वज शुण्ठ्या सम्भव क्वाथीकृत कीलालं जलम्, "पय कीलालममृत जीवन भुवन वनम्" इति अमर । प्रपिबति पान करोति तस्य वक्त्रे मुखे रुचि भोजनेच्छा स्यात्, चित्तदृष्ट्यो मनसि नेत्रयोश्च नैर्मल्य स्वच्छता स्यात् जठरजठररुक्पीनसश्वासकासा अग्निमान्द्यप्रतिश्यायश्वासकासा नश्यन्ति शाम्यन्ति, क्षुत्प्रबोध बुभुक्षोत्पत्ति वपुषो द्युतिरपि कान्तिमच्छरीरमपि जायते तथा मञ्जुघोषः सरसवाक् च भवति, हे मञ्जुघोषे ! मधुरभाषिणि ! सुदति ! अत्र भूलोके मम लोलिम्ब-

राजस्य परम् अत्यन्त विस्मयोऽद्भुत वर्तते। यत. एक एव शुण्ठ्या कषायः किं किं न करोतीति विस्मये हेतु । विस्मयप्रदर्शनव्याजेन शुण्ठ्या. माहात्म्यातिशयो ध्वनित' कविना। अपरपक्षे गङ्गादिजलाना महत्त्व प्रदर्शयन्नाश्चर्य प्रकटयति कवि । वृत्त शार्दूलविक्रीडितम्।

हिन्दी—स्वस्थ अथवा अस्वस्थ जो भी मानव सोंठ का क्वाथ प्रतिदिन पीता है उसकी भोजन के प्रति इच्छा बढ़ती है, चित्त में प्रसन्नता, आंखों में ज्योति आ-जाती है, मन्दाग्नि प्रतिश्याय (जुकाम) श्वास (दमा) कास इनका नाश हो जाता है, भूख बढ़ने लगती है शरीर कान्तिमय हो जाता है, वाणी सुरीली हो जाती है, हे सुरीली वाणी तथा सुन्दरदन्तपंक्ति वाली रत्नकला ! इस ससार में मुझे सोंठ के इतने गुणों को देखकर अत्यन्त आश्चर्य है। दूसरे पक्ष में गङ्गा आदि के जलों का महत्त्व दिखाया गया है ॥ ३९ ॥

दन्तरोगप्रतीकारमाह—

धन्योऽसि रे बकुल सन्मलयाख्यशैल-
मन्दानिलेन चपलीकृतबालपत्र ।
त्वद्वल्कलस्य रजसः परिघर्षणेन
दन्ता भवन्ति चपला अपि वज्रतुल्याः ॥ ४० ॥

व्याख्या—सन्मलयाख्यशैलमन्दानिलेन चपलीकृतबालपत्र सश्चासौ मलय सन्मलय., स आख्या यस्य स स चासौ शैल पर्वत तस्य मन्दानिलेन वायुना चञ्चलीकृतकिसलय रे बकुल मधुगन्ध, त्व धन्योऽसि कृतार्थोऽसि। त्वद्वल्कलस्य रजस चूर्णस्य परिघर्षणेन चपला चञ्चला अपि दन्ता वज्रतुल्या कठोरा स्थिरा भवन्ति। वसन्ततिलकावृत्तम्। तस्य गुणा —

बकुलस्तुवरोऽनुष्ण कटुपाकरसो गुरुः।
कफपित्तविषश्वित्रकृमिदन्तगदापहः ॥ भ० नि० ॥

हिन्दी—मलयमरुत से आन्दोलित किसलय युक्त रे बकुल (मौलसिरी) वृक्ष ! तुम धन्य हो, तुम्हारी छाल के चूर्ण का मञ्जन करने से हिलते हुए दांत भी वज्र के समान कठोर हो जाते हैं ॥ ४० ॥

प्रकारान्तरेण बकुलमेव प्रस्तौति—

केलीशैले बकुलपटलं वर्तते यत्त्वदीये
चन्द्रास्ये तत्सकलभयतो यत्नतः पालनीयम्।
कस्मात् स्वामिन् भवति सुतरां त्वत्कृपा नेतरेषां
तस्य त्वग्भिर्दशनदृढता दृश्यते तन्वि यस्मात् ॥ ४१ ॥

व्याख्या—हे चन्द्रास्ये ! चन्द्रवदने ! यत्वदीये त्वत्सम्बन्धिनि केलीशैले क्रीडापर्वतके वकुलपटल मधुगन्धवृक्षसमूहो वर्ततेऽस्ति तत् पटल सकलमयत. सम्पूर्णाभ्यो वाधाभ्यो यत्नत प्रयत्नपूर्वक पालनीय रक्षणीयम् । कस्मात् स्वामिन् त्वत्कृपा तव दया इतरेषाम् उपरि सुतरा न भवति (किम्) । इति रत्नकलया पृष्टे सति समादधाति लोलिम्बराज·— हे तन्वि ! हे कृशोदरि ! यस्मात्कारणात् तस्य वकुलस्य त्वग्भि दशनदृढता दन्ताना स्थैर्य दृश्यते, न केवल शास्त्रेषु श्रूयते एव । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

हिन्दी—हे चन्द्रमुखि ! जो तुम्हारे मनोविनोद के लिये बगीचा बना रखा है उसमें एक जगह मौलसिरी के पेड हैं, उनकी भली-भाँति रक्षा करनी चाहिये, किसलिये पतिदेव ! आपकी कृपा और वृक्षों के ऊपर नहीं है क्या ? । तव लोलिम्बराज उत्तर देते हैं, हे कृशोदरी ! क्योंकि वकुल की छाल के चूर्ण का मञ्जन करने से दांत स्वच्छ एव दृढ हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

दन्तविकारचिकित्सामाह—

कान्ते कामिनि भामिनि प्रियतमे तन्वङ्गि चन्द्रानने
सुभ्रु प्रेयसि मानिनि स्मररणक्षोणि क्षणं श्रूयताम् ।
रुग्लोध्राम्बुदतेजविड्द्विरजनीतिक्तासमंगावृकी
तेषां चूर्णविघर्षणादपहरेत् कण्डूं रुगस्रस्रुतिम् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—कान्ते सुन्दरि कामिनि कामशीले भामिनि क्रोधने प्रियतमे वत्सले तन्वङ्गि कृशोदरि चन्द्रानने मृगाङ्कमुखि सुभ्रु सद्भ्रलते प्रेयसि अतिशयप्रिये मानिनि गर्विणि स्मररणक्षोणि कामयुद्धाधारे रत्नकले क्षण श्रूयताम् । रुक् कुष्ठ लोध्र रोध्र अम्बुदः मुस्ता तेजवल्कल तेजपत्र विट् लवण द्विरजनी हरिद्रा दारुहरिद्रा च तिक्ता कटुका मञ्जिष्ठा वृकी पाठा तेषां पूर्वोक्ताना चूर्णविघर्षणाद् दन्तानां कण्डू रुजम् पीडाम् अस्रस्रुतिं-रक्तस्रावम् अपहरेत् । वृत्त शार्दूलविक्रीडितम् ।

हिन्दी—अनेक सद्गुणों से अलकृत हे रत्नकला ! जरा सुनो ! कूठ पठानीलोध नागरमोथा तेजपत्ता विड् नमक (कालानमक) हल्दी दारुहल्दी कुटकी मजीठ पाठा इनका वारीक चूर्ण करके दांतों में मलने से खुजली और रक्त का स्राव होना बन्द हो जाता है । यह दन्तरोगहर मञ्जन है ॥ ४२ ॥

इति श्रीमल्लोलिम्बराजविरचिते चमत्कारचिन्तामणौ क्षयादिरोगप्रतीकारोनाम
चतुर्थो विलास· समाप्तः ।

अथ पञ्चमो विलासः

सुखिजीवन विशिनष्टि—

शयनं यदि पल्लवपुष्पकृतं गहनं यदि मत्तपिकं सरुतम् ।
यदि चारुवपुर्यदि भूरिधनं किमतः परमस्ति सुखं द्युसदः ॥ १ ॥

व्याख्या—पल्लवपुष्पकृत किसलयै कुसुमैश्चरचित यदि शयन शय्या स्यात्, यदि गहनम् उद्यान मत्तपिकावलीसहित तथा सरुत पक्षिणा विरावै सहितम्, यदि चारु सुन्दर नीरोगञ्च वपु शरीर यदि भूरि विपुल धन स्यात् । भो द्युसद सुरा अत पर किं सुखम् अस्ति । स्वर्गेऽपि एतदतिरिक्त न किमपि वर्तते, इत्यभिप्राय । अत एव द्युसद इति सम्बोधनम् । तोटकवृत्तम् ।

हिन्दी—कोमल फूल तथा पत्तियों से रचित सुगन्धित शयन, मद माती हुई कोयलों के कलरव से पूर्ण बगीचा, सुन्दर एव सुखी शरीर तथा इच्छानुकूल धन इतनी वस्तुयें यदि प्राप्त हों तो हे देवताओ ! स्वर्ग में इससे बढ़कर क्या और कुछ सुख है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥ १ ॥

तदेव प्रकारान्तरेण वर्णयति—

अमन्दामोदमन्दारे प्रमोदोदयदायिनि ।
मरुदान्दोलितोदारचञ्चच्चम्पकचारुणि ॥ २ ॥
भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलङ्कृते ।
स्फुरद्वने सुखावासः कामिनां कामदो भवेत् ॥३॥युग्मकम्॥

व्याख्या—प्रमोदोदयदायिनि प्रमोदस्य आनन्दस्योदय त ददातीति तस्मिन् अमन्दामोदमन्दारे अमन्दो विपुलश्चासौ आमोद• सुगन्धि तेन युक्ते मन्दारे पारिजाते, मरुदान्दोलितोदारचञ्चच्चम्पकचारुणि मरुता वायुना आन्दोलित कम्पितम् उदारश्च तत् चञ्चच्चपल चम्पक स्वर्णपुष्पक तेन चारु तस्मिन् , भ्रमद्भ्रमरमालाभि भ्रमन्त्यश्च ता भ्रमराणां द्विरेफाणां माला [पङ्क्तय ताभि मालतीभि जातीभि अलङ्कृते सुशोभिते स्फुरद् दीप्यद् यद् वन तस्मिन् गृहारामे सुखावास कामिनां कामेच्छासनाथीकृतचेतसां विलासिना कृते कामद मनोवाञ्छितार्थप्रद भवेदिति शेष । अनुष्टुप्छन्द• ।

हिन्दी—आनन्द को देनेवाले अत्यन्त सुवासित पारिजात वृक्ष वाले, हवा के झोंको से झकझोरे हुए सुन्दर चम्पक पुष्पों से सुगन्धित, मडराते हुए भौंरों की माला से घिरे हुए पुष्पित मालती वृक्षों से सुशोभित घर के बगीचे का सुखद निवास कामीजनों की इच्छा को पूर्ण करता है ॥ २-३ ॥

वाजीकरणयोग्यस्त्रीलक्षणमाह—

रहसि गलितलज्जा बाह्यदेशे सलज्जा
कुचभरनमिताङ्गी चन्दनक्षालिताङ्गी।
मृदुतरमुपयान्ती श्रोणिवक्षोजभाराद्
दृढयति कमलाक्षी कस्य कामं न कामम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—रहसि एकान्ते गलितलज्जा गलिता क्षीणा लज्जा यस्याः सा निर्लज्जा बाह्यदेशे समाजे सलज्जा ह्रीमती, कुचभरनमिताङ्गी स्तनयोर्भारेण आनतपूर्वकाया चन्दनक्षालिताङ्गी मलयजलिप्तदेहा श्रोणिवक्षोजभारात् श्रोणि ककुद्मती वक्षोजौ स्तनौ तेषां भारात् मृदुतर शिथिलशिथिलम् उपयान्ती गच्छन्ती, अनेन गजगामिनीत्वमस्या व्यज्यते। एतादृशी कमलाक्षी सरसिजनेत्रा कस्य पुंस काम रिरंसा कामम् अत्यन्त न द्रढयति। अपितु सर्वस्यापि काम द्रढयतीत्यर्थ । मालिनीवृत्तम्।

हिन्दी—एकान्त में निर्लज्ज किन्तु समाज के सामने अत्यन्त-लज्जाशील स्तनों के भार से झुकी हुई चन्दन के लेप से शीतल एवं सुवासित, नितम्ब और स्तन के भार से धीरे-धीरे चलने वाली (अर्थात् गजगामिनी) कमलनयना किसकी कामवासना को पूर्ण रूप से दृढ नहीं कर देती ॥ ४ ॥

वाजीकरणयोग —

सुन्दरि विदारिकायाः सम्यक् स्वरसेन भवितं चूर्णम्।
सर्पिःक्षौद्रसमेतं लीढ्वा रसिको दशांगना रमयेत् ॥ ५ ॥

व्याख्या—हे सुन्दरि! रत्नकले! विदारिकाया विदार्या चूर्ण स्वरसेन विदार्या रसेन भावित सर्पि क्षौद्रसमेत घृतमधुभ्यां सह सम्यग् यथाविधि लीढ्वा रसिको रिरंसु दशांगना दशस्त्रिय रमयेत्।

हिन्दी—हे रत्नकला! विदारी के चूर्ण को उसी के रस की भावना देकर सुखा ले, फिर इस चूर्ण को घी और शहद के साथ मिलाकर चाटे। इसके सेवन से वह दस स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है ॥ ५ ॥

वीर्यवर्धको योग —

चूर्णमामलकजं मृगनेत्रे भावितं स्वजनितेन रसेन।
शर्करामधुपयोघृतयुक्तं यः पिबेत् प्रतिदिनं रतलुब्धः ॥ ६ ॥

व्याख्या—आमलकज धात्रीसमुद्भूत चूर्ण स्वजनितेनामलकीजेन रसेन भावित मृगनेत्रे मृगचर्मणि शुष्कीकृत शर्करामधुपयोघृतयुक्तम् उपलाक्षौद्रदुग्धसर्पि समेत य कामुक पिबेत् स प्रतिदिन रतलुब्ध रिरंसु भवेत्।

हिन्दी—हे कमलनयना रत्नकला ! शतावरी और सफेद गुञ्जा का चूर्ण सुखी जीवन चाहने वाले व्यक्ति सदा सेवन करें। यह चूर्ण पतले शुक्र को गाढ़ा करके उसमें स्थिरता लाता है ॥ १२ ॥

कार्श्यहरो योग —

सर्पिषा पयसा वाऽथ अश्वगन्धापलार्धकम् ।
प्रभाते सेवनं कुर्यात् कृशानां पुष्टिकारणम् ॥ १३ ॥

व्याख्या—सर्पिषा घृतेन पयसा दुग्धेन वा अश्वगन्धा हयगन्धा तस्या पलार्धकं तोलकद्वयपरिमित तच्चूर्ण प्रभाते प्रत्युषसि सेवन कुर्यात्, एतच्चूर्ण कृशाना तनुतनुमतां पुष्टिकारक स्थौल्यसम्पादने साहाय्य करोति । अनुष्टुप्छन्द ।

हिन्दी—घी अथवा दूध के साथ असगन्ध का चूर्ण दो तोला लेकर प्रात'काल प्रतिदिन सेवन करे। इसके सेवन से कृशता दूर हो जाती है।

विशेष—नागौरी असगन्ध का दो तोला चूर्ण लेकर आधा सेर दूध में मन्द मन्द आंच से पकाकर रबड़ी जैसा होने पर उतार कर रख दें। इसमें मिश्री मिलाकर सेवन करने से कृशता के कारण शरीर तथा चेहरे पर पड़े हुए गड्ढे शीघ्र ही भर जाते हैं और दिनों दिन स्वास्थ्य लाभ होने लगता है ॥ १३ ॥

बलवर्द्धको योग'—

तूलिनीपुष्पचूर्णन्तु क्षौद्रकर्षं लिहेदनु ।
दुर्बलो बलमाप्नोति मासैकेन यथा शशी ॥ १४ ॥

व्याख्या—तूलिनीपुष्पचूर्णन्तु तूलिनी शाल्मली तस्या पुष्पचूर्ण क्षौद्र मधु तस्य कर्ष कोलद्वयम् अनु पश्चाल्लिहेच् चेत् दुर्बल क्षीणशक्ति पुरुष बलमाप्नोति पुन. बलवान् भवति यथा कृष्णपक्षे समायाते शशी क्षीण भवति पुन मासैकेन एकमासाभ्यन्तरे एव पूर्णता याति तद्वन्मानवोऽपि बलवान् भवति । अनुष्टुप्छन्द. ।

हिन्दी—सेमल के फूलों का चूर्ण १ तोला मधु के साथ चाटने से दुर्बल पुरुष उस प्रकार पुन' बलवान् हो जाता है जिस प्रकार एक महीने में चन्द्रमा ॥ १४ ॥

वीर्यस्तम्भकरो योग —

अश्वमारजटालेपं यः करोति करे मणौ ।
वीर्यस्तम्भं स लभते कर्णाटीसुरतेष्वपि ॥ १५ ॥

व्याख्या—य कामी अश्वमारजटालेप श्वेतकरवीरमूललेप करे हस्ते मणौ शिश्नमुण्डे च करोति स कर्णाटीसुरतेष्वपि द्रविडस्त्रीमैथुनेषु अपि वीर्यस्तम्भं लभते प्राप्नोति । अनुष्टुप्छन्द. ।

हिन्दी—जो कामी पुरुष सफेद कनेर की जड़ का लेप हाथ की हथेली तथा लिङ्ग के अग्रभाग में मैथुन से कुछ समय पूर्व करके फिर मैथुन करता है वह कर्नाटक देश की स्त्रियों के साथ मैथुन करने में भी वीर्य स्तम्भन का लाभ उठाता है ॥ १५ ॥

अपरो वीर्यस्तम्भकरो योग.—

क्वाथं पिबेत् खाखसवल्कलानां सर्पिर्यवानीगुडमिश्रितं यः ।
प्राप्नोति भूयः सुरतेषु दार्ढ्यं भवेद् रिरंसुः कलविंकवत् सः ॥ १६ ॥

व्याख्या—य॰ रिरंसु मैथुनेच्छावान् सर्पिर्यवानीगुडमिश्रित सर्पि घृत यवानी अजमोदा गुड॰ इक्षुविकार एभिर्मिलित खाखसवल्कलाना खसतिलफलत्वचा क्वाथ कषायं पिबेत् स भूय पुनरपि कलविंकवत् सुरतेषु दार्ढ्यं चटकवन्मैथुनेषु स्थायित्व प्राप्नोति लभते । इन्द्रवज्रावृत्तम् ।

हिन्दी—जो मैथुनाभिलाषी पुरुष घी अजवायन और गुड़ के साथ पोस्ता की त्वचा (छिलका) के क्वाथ का सेवन करता है, वह फिर से गौरैया की भांति मैथुन में स्थिरता को प्राप्त करता है । अर्थात् उसका वीर्य शीघ्र स्खलित नहीं होता ॥१६॥

कामिनीविद्रावणो रस —

सकर्पूरो रसक्षौद्रजातीरजविमिश्रितः ।
लिङ्गलेपात् करोत्येष द्रावणं हरिणीदृशाम् ॥ १७ ॥

व्याख्या—सकर्पूर घनसारेण सहित रस॰ पारद क्षौद्र मधु जातीरज टकणः त्रिभिरेभिर्विमिश्रित सम्पृक्तो लेप सञ्जायते । एष लिङ्गलेपात् हरिणीदृशा मृगनयनीनां द्रावण विद्रावण करोति । अनुष्टुप्छन्द॰ ।

हिन्दी—कपूर शुद्ध पारा शहद सुहागा इनको मिलाकर एक लेप बनता है, इसका मैथुन के पूर्व लिंग के ऊपर लेप कर सम्भोग करने से स्त्रियाँ शीघ्र स्खलित हो जाती हैं ॥ १७ ॥

ग्रन्थान्ते जगन्मङ्गलात्मक मङ्गलाचरणम्—

वक्षोजन्मभरालसाः सुजघनाः सम्पूर्णचन्द्राननाः
श्यामाश्चञ्चललोचनाः सुवसना गम्भीरनाभिह्रदाः ।
क्षामा वन्धुरकन्धराः सुदशनाः बिम्बाधराः सुस्वरा
भव्यानां भवने वसन्ति वनिता विश्वेश्वरानुग्रहात् ॥ १८ ॥

व्याख्या—वक्षोजन्मभरालसा॰ स्तनयुगलभरेण शिथिलीकृता, सुजघना॰ शोभनं

जघन यासां ता जघन स्त्रीकट्या: पुरोभाग तेन युक्ता सम्पूर्णचन्द्रानना राकाविधुमुख्यः श्यामा षोडशवार्षिक्य युवतय चञ्चललोचना चपलनयना', सुवसना सुवाससः गम्भीरनाभिह्रदा गभीरनाभितडागा क्षामा कृशोदर्य वन्धुरकन्धराः उन्नतग्रीवाः सुदशना शोभनरदना बिम्बाधरा: बिम्बफलवद्रक्तदशनच्छदा सुस्वरा मञ्जुघोषा: वनिता स्त्रिय विश्वेश्वरानुग्रहात् शम्भो कृपात भव्याना श्रीमता भवने गेहे गेहे वसन्ति निवास कुर्वन्ति। इत्थभूता सुलक्षणा देव्य सर्वेषा गृहे वसन्तु सर्वे भव्या श्रीमन्तो भवन्तु इत्याकारिका शुभाशसा कवेर्ग्रन्थान्ते लोककल्याणाय मन्निबद्धा। वृत्त शार्दूलविक्रीडितम्।

वाजीकरणप्रकरण समाप्तम्।

सप्तयुग्माभ्रयुग्मेऽब्दे वैक्रमे पञ्चमीतिथौ।
माघशुक्ले भानुवारे कृतिर्मे पूर्णतामगात्॥

हिन्दी—पीन एवं उन्नत स्तनों के भार से अलसायी हुई, सुन्दर जाघ वाली, पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख वाली, षोडशी, चञ्चल चितवन वाली, वस्त्राभूषणों से अलंकृत, गम्भीरनाभियुक्त, कृशोदरी, लम्बी गरदन सुन्दर दन्त पंक्ति, बिम्ब फल के समानाकार होंठ और सुरीली वाणी वाली स्त्रियाँ भगवान् विश्वनाथ की कृपासे श्रीमानों के घरों में निवास करती हैं॥ १८॥

विशेष—यह अन्तिम पद्य कवि ने अपनी रसिकता के अनुरूप विश्वकल्याण की भावना से प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा वह कामना कर रहा है कि—उक्त प्रकार की सुलक्षणा देवियां सबके घरों में निवास करें, सभी श्रीमान् हों और सुखी रहें।

इति श्रीमल्लोलिम्बराजविरचिते चमत्कारचिन्तामणौ वाजीकरणद्रव्यवर्णनंनाम पञ्चमो विलास समाप्त:।



ग्रन्थ-परिचयः

श्रीमच्छोलिम्बराजः स जयति विबुधाग्रेसरः सप्तशृङ्ग्याः,
सद्भक्तस्याऽऽप्तदीक्षः कविकुलकमलोल्लासहासे नदीष्ण।
नासिक्याऽऽसन्नभूमौ दिवसकरगृहे जन्मलाभो यदीयः
सोऽयं विद्वद्वरेण्यो हरिहरनृपते राजमन्त्रित्वमाप ॥ १ ॥

पत्नी रसकला कलासु कुशला वैदुष्यसीमाञ्चिता
शोभा कामपि पुष्णती यवनजा याऽऽसीन् मुरासाऽभिधा।
सामुद्वाह्य कविश्चकार सुबहून् संवादरूपोद्धुरान्
ग्रन्थान् यैः कवितालता रसवती सत्पुष्पिता राजते ॥ २ ॥

तांस्तान् ग्रन्थवरान् निरीक्ष्य परितः सिद्धाशयान् कामदान्
साहित्यप्रवणान् भिषग्वरहितान् सद्भिः समभ्यर्चितान्।
मच्चेतो मुखरीबभूव कुतुकात् तेषां दिदृक्षाविधौ
तस्मादेष मणिश्चमत्कृतिकरः प्रस्तूयते वः पुरः ॥ ३ ॥

ग्रन्थोऽयं योगरत्नैरनुभवसुलभैः शास्त्रपूतैश्च सिद्धैः
राद्यन्तं मण्डितोऽपि श्रयति सरसतां ग्रन्थकर्तुः प्रभावात्।
तस्मादेषोऽपि कृत्स्नां कलिकलुषवतां कायिकीं मानसीं च
व्याधिव्रातोत्थचिन्तां व्यपनयतु चमत्कारचिन्तामणिर्वः ॥ ४ ॥

सद्योलाभो ध्रुवो लाभश्चमत्कारौ प्रकीर्तितौ।
कथं स्यातामियं चिन्ता तां निराकुरुते मणिः ॥ ५ ॥

अभिप्रायो बुधस्यास्य सम्भविष्यति तेन यत्।
अस्य नाम चमत्कारचिन्तामणिरिदं कृतम् ॥ ६ ॥

श्रीगुरुः स्मरणम्

सांख्ये व्याकरणे नयेऽथ विनये भैषज्यविद्यास्वलं
साहित्येऽपि च यस्य धीर्गतिमती तत्त्वार्थसम्बोधिनी।
यः शिष्येषु सुधामयाननुभवान् वर्षत्यजस्रं मुदा
सोऽस्माकं गुरुलालचन्द्रविबुधो ध्येयः सुराचार्यवत् ॥ ७ ॥

आयुर्वेदोदकैर्यस्त्रिविधमपि मलं क्षालयत्येव पुंसां
योगज्ञानेन चित्तं विशदयतितमां पाणिनीयेन वाचम्।
साक्षाच्छेषावतारः प्रवहति विपुलां धीधुरं शान्तचित्तो
विद्वद्वृन्दाग्रगण्यो जयति गुरुवरो लालचन्द्रो मनस्वी ॥ ८ ॥

इति कतिपयपद्यैर्ग्रन्थकर्तुर्गुरोश्च प्रणयरससनाथः संस्तवो यो मयोक्तः।
विशदगुणमहिम्नोः प्रीतये स्यात् स चेत् सद्विपुलमुदमुपेयाम्भक्तिभावोपपन्नः ॥९॥

तारादत्ततनूजस्य ब्रह्मानन्दत्रिपाठिनः।
अनया टीकया मोदः परं स्यात् सुधियां सदा ॥ १० ॥

अलङ्कारादि परिचयः

प्रयुक्तौषधद्रव्याणाम् अकाराद्यनुक्रमः

अगस्त्य	कत्था	गजपीपल
अजवायन	कपूर	गधा का मूत्र
अडूसा	कमल	गम्भारी
अतिबला	करञ्ज	गिलोय
अतीस	काकड़ासिंगी	गुग्गुलु
अदरख	कायफल	गुड़
अनार	कालाजीरा	गूमा
अपराजिता	कालातिल	गोखरू
अमचूर	कालानमक	गोघृत
अमलतास	कालीमिरिच	गोबर
अरणि	कालीसारिवा	गोमूत्र
अर्जुन	कास	घुघची
अशोक	किवांच	घृत
असगन्ध	कुटकी	घोड़ा का खुर
आँवला	कुटज	चकवड़
आम	कुत्ता की हड्डी	चकोतरा
इन्द्रजौ	कुलथी	चव्य
इन्द्रायण	कुश	चावल का धोवन
इमली	कूठ	चित्रक
इलायची	केला	चिरायता
एरण्ड	केवड़ा	चिरौंजी
कंघी	खस	चीनी
कचूर	खिरेंटी	चेतकी (हरड़)
कच्चे बेल का गूदा	खैर का छाल	चौलाई
कण्टकारी (छोटी)	गंधक	जमालगोटा
कण्टकारी (बड़ी)	गंधरस	जल

जवाखार
जवासा
जामुन की गुठली
जायफल
जौ
जौंक
तमाल
तिलकपुष्प
तिलतैल
त्रिफला
तुषोदक
तेजपत्ता
दही
दाड़िम
दारुहल्दी
दुरालभा
देवदारु
द्रोणपुष्पी
धनियाँ
धमासा
धान का लावा
धाय के फूल
नलद
नागकेसर
नागरमोथा
नागौरी असगन्ध
नारियल
निशोथ
नीम की छाल

नीलकमल
नेत्रवाला
पठानीलोध
पद्माख
पाढल
पानी आँवला
पारद
पिठवन
पितपापड़ा
पिप्पलीमूल
प्रियंगु
पीपल
पीली सरसों
पुनर्नवा
पोस्ता
पोहकरमूल
बकरी का दूध
बबूल क्वाथ
बला
बहेड़ा
बाकुची
बालबच
बिजौरा नीबू
बेर
बेल
बोल चूर्ण
भद्रमुस्ता
भांग
भारंगी

भिलावा
भुँइ आँवला
भृंगराज
मक्खन
मजीठ
मठा
मद्य
मदार
मधुकर्कटी
मधु
मरिच
मरोड़फली
महाबला
महुआ
मांड
मांसरोहिणी
मिश्री
मुनक्का
मुलेठी
मूर्वा
मैनशिल
मोचरस
मोती
मौलसिरी
रसवत्
रास्ना
रुचकलवण
रेड़ की जड़
रेणुका

रेह लवण	श्रीफल	सिन्दूर
लवंग	सज्जीखार	सुगन्धवाला
लहसुन	सफेद कनेर	सेमल के फूल
लाख	सफेद गुञ्जा	सेहुण्ड का फूल
लाजा	सफेद चन्दन	सैंधानमक
लालचन्दन	सम्हालू	सोंचर लवण
लोध	समुद्रफेन	सोंठ
लौहभस्म	सरसों का तेल	सोना पाठा
वचा	सलई	सौंफ
वरुण	सहजन (लाल)	हरीतकी
वायविडंग	सहदेई	हरही
विदारीकन्द	स्वर्णगैरिक	हाऊबेर
शतावरी	स्वर्णमाक्षिक	हिंगुपत्री
शरपुङ्खा	साम्हर लवण	हिरौंजी
शालिचावल	सारिवा (काली)	हींग
शालीपर्णी	सारिवा (सफेद)	हीरा कासीस
शिलाजीत	सिंहिका	



सहायकग्रन्थानां सूची

१ चरकसंहिता
२ सुश्रुतसंहिता
३ वाग्भट संहिता
४ हारीत संहिता
५ शार्ङ्गधर संहिता
६ माधवनिदान
७ रसेन्द्रसारसंग्रह
८ भैषज्यरत्नावली
९ चक्रदत्त
१० भावप्रकाशनिघण्टु
११ अभिनवनिघण्टु
१२ रसार्णवतन्त्र
१३ हस्त्यायुर्वेद
१४ वैद्यावतंस
१५ वैद्यजीवन
१६ महाभारत
१७ मत्स्यपुराण
१८ हरिवंशपुराण
१९ अग्निपुराण
२० सिद्धान्तकौमुदी
२१ अमरकोशः
२२ मेदिनी कोश
२३ हरिविलास काव्य
२४ विष्णुसहस्त्रनामस्तोत्र
२५ चाणक्यनीति

